छठी सि. पं. फूलचन्द्र शास्त्री व्याख्यानमाला

जैन-पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख
एक परिशीलन

(Jaina Manuscripts and Inscriptions - An Overview)

प्रो.राजाराम जैन

प्रकाशक
सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री फाउण्डेशन,
रुड़की (उत्तराखण्ड)
श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी (उ.प्र.)

प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की अमूल्य धरोहर

जैन पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख : एक परिशीलन

(सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री शताब्दी समारोह वर्ष के उपलक्ष्य में प्रदत्त दो स्मारक–व्याख्यानों के माध्यम से पाण्डुलिपियों की आवश्यकता, उनके उद्भव और विकास, प्रारम्भिक लेखनोपकरण-सामग्री, पाण्डुलिपि-प्रकार, लिपि-भेद, भारतीय इतिहास के निर्माण में जैन-शिलालेखों, ग्रंथ-प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं के योगदान, विदेशों में सुरक्षित लक्षाधिक भारतीय पाण्डुलिपियाँ, फारसी-भाषा एवं लिपि में उपलब्ध जैन पाण्डुलिपियाँ आदि-आदि पर प्रथम बार प्रस्तुत प्रेरक–रोचक सामग्री)

प्रो.डॉ. राजाराम जैन, डी. लिट्

(राष्ट्रपति सहस्राब्दी सम्मान-पुरस्कार – (२००० ई.) द्वारा सम्मानित)

पूर्व यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, ह. दा. जैन कालेज, आरा, बिहार

(मगध विश्वविद्यालय)

प्रकाशक

सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री फाउण्डेशन, रुड़की (उत्तराखण्ड)

एवं

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान

नरिया, वाराणसी (उ.प्र.)

२००७ ई.

प्रकाशकः
सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री फाउण्डेशन,
रुड़की - २४७ ६६७ (उत्तराखण्ड)
एवं
श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, नरिया,
वाराणसी - २२१ ००५ (उ.प्र.)

आई एस बी एन नं.: ८१–८६६५७–४८–०

प्रथम संस्करण – २००७

मूल्यः १००/– रुपये मात्र

मुद्रकः
अजय प्रिंटर्स एवं पब्लिशर्स
१६, सिविल लाईन, रुड़की (उत्तराखण्ड)
दूरभाषः ०१३३२ – २७३१४०

Invaluable National Treasure of Ancient Knowledge

Jaina Manuscripts and Inscriptions: An Overview

(The two memorial lectures delivered on the auspicious occasion of the first centenary celebrations of Siddhantacharya Pt. Phoolchandra Shastri regarding the origin and development of Indian Manuscripts, the ancient writing materials, types of Manuscripts, types of scripts, contribution of Jaina Inscriptions, eulogies and colophons to the formation of Indian History and Culture, Jain literature written in Persian language and scripts, thousands of Indian Manuscripts preserved in European and Asian countries etc.)

Prof. Dr. Raja Ram Jain, D.Lit.

(Recipient of President's certificate of Honour - 2000)

Ret. Professor & Head, H.D. Jain College, Aara, Bihar

(Magadh University)

Publisher

Sidhantacharya Pt. Phool Chandra Shastri Foundation

Roorkee - 247 667 (Uttrakhand)

and

Shri Ganesh Varni Digambar Jain Sansthan

Naria, Varanasi - 221 005 (U.P.)

2007

Published by:
Sidhantacharya Pt. Phool Chandra Shastri Foundation,
Roorkee - 247 667 (Uttrakhand)
and
Shree Ganesh Varni Digambar Jain Sansthan, Naria,
Varanasi - 221 005 (U.P.)

ISBN No.: 81-86957-48-0

First Edition: 2007

Price: Rs. 100/- only

Printed at:
Ajay Printers & Publishers
19, Civil Lines, Roorkee (Uttarakhand)
Phone: 01332-273140

जयदु सुद देवदा

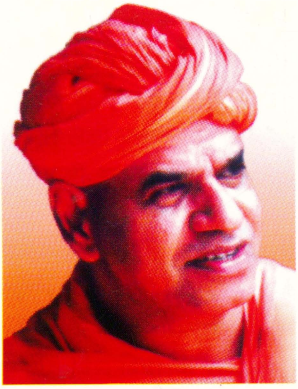

श्रमण परम्परा में जिनवाणी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रत्नत्रय – आराधना का मूल आधार श्रुतदेवता की आराधना करना है। दर्शन और ज्ञान आत्मा के अभिन्न गुण हैं। ज्ञान की आराधना का एक आधार शब्द–शिक्षा भी है। शब्दों की सुरक्षा से अर्थ सुरक्षित होते रहते हैं। शब्दों की साज–संवार ने ही पाण्डुलिपि–लेखन और संरक्षण को बल दिया है। एक प्रकार से पाण्डुलिपि का लेखन, संरक्षण, सम्पादन, अनुवाद आदि श्रुतकार्य जिनवाणी की सेवा के कार्य ही हैं। अतः पाण्डुलिपि–विज्ञान को समझना और समझाना जिनवाणी का ही प्रचार है, श्रुतदेवी की आराधना है। देव–शास्त्र और गुरू इस त्रिवेणी में शास्त्र के जुड़ने से पाण्डुलिपि का ज्ञान–विज्ञान स्वयमेव जिनवाणी का अंग बन गया है। जिनवाणी की सेवा में तन्मयता और पुरूषार्थपूर्वक सुदीर्घ काल से संलग्न प्रो. डा. राजाराम जैन ने ''जैन पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख'' विषय पर जो व्याख्यान दिये हैं, वे उनके द्वारा की गयी श्रुतसेवा के दस्तावेज हैं। उन्होंने प्राचीन ज्ञान–विज्ञान की अमूल्य धरोहर के रूप में पाण्डुलिपियों और शिलालेखों के इतिहास को रोचक शैली में प्रस्तुत किया है।

सिद्धान्ताचार्य पण्डित फूलचन्द्र शास्त्री फाउंडेशन, रूड़की एवं श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी द्वारा प्रकाशित होने वाली प्रो. डा. राजाराम जैन की यह पुस्तक ''जैन पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख–एक परिशीलन'' भारत की प्राचीन पाण्डुलिपियों के संरक्षण, सम्पादन एवं प्रकाशन के क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों के लिए ज्ञानवर्द्धक एवं प्रेरणास्पद है। इससे प्राकृत के प्राचीन शिलालेखों के महत्त्व पर भी प्रकाश पड़ता है। नई पीढ़ी के विद्वान पाण्डुलिपि–सम्पादन के कार्य को प्रमुखता देकर इसमें जुटें तो देश की सांस्कृतिक विरासत प्रकाश में आ सकेगी और विद्वानों का ज्ञान भी बहु आयामी बनेगा। इस पुस्तक द्वारा प्रो. डा. राजाराम जैन ने और इसकी प्रकाशक संस्था ने जैनविद्या के अध्ययन को निस्सन्देह ही एक नयी दिशा दी है। अतः दोनों ही बधाई के पात्र हैं। इन्हें मंगल साधुवाद।

१० जून, २००७, श्रुतपंचमी

स्वस्ति चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी
श्रवणबेलगोला

प्रकाशकीय

पाण्डुलिपियाँ (Manuscripts) किसी भी समाज की समुन्नत प्रतिभा एवं संस्कृति की परिचायिका मानी जाती हैं। जिस प्रकार पुरातात्विक सामग्री (Archaeological Remains) एवं शिलालेख (Inscriptions) किसी भी देश के इतिहास के निर्माण के लिये प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार पाण्डुलिपियाँ भी भूत-लक्षी-प्रभाव से समकालीन इतिहास एवं संस्कृति को चित्रित करने हेतु *बहुआयामी सामग्री का वरदान देती हैं।*

प्राच्य जैन-विद्या ने अपनी श्रेष्ठता, मौलिकता तथा गुणवत्ता के कारण पिछली लगभग ३ सदियों से विश्व के भारतीय प्राच्य-विद्या के प्रेमी विद्वानों को आकर्षित किया है। १९वी–२०वी सदी में इस दिशा में जो विविध पक्षीय शोध-कार्य हुए हैं, वे तो निश्चय ही आश्चर्यजनक हैं। हम जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, आदि के प्राच्य भारतीय विद्याविदों के सदा आभारी रहेंगे, जिन्होंने जैनधर्म की प्राचीनता एवं मौलिकता को सिद्ध कर उसकी स्वतंत्र सत्ता पर प्रकाश डालकर उसकी गौरवपूर्ण परम्पराओं को मुखर किया। यही नहीं, उन्होंने प्राचीन जैन पाण्डुलिपियों का गहन अध्ययन कर उनका सम्पादन, अनुवाद एवं समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर भारतीय प्राच्य-विद्या के शोधार्थियों का मार्गदर्शन भी किया है।

हम प्रो.डॉ. राजाराम जैन के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने प्रारम्भिक लेखनोपकरण-सामग्रियों के उद्भव एवं विकास पर रोचक सामग्री प्रस्तुत करते हुए प्राचीन जैन पाण्डुलिपियों एवं शिलालेखों का सरस एवं रोचक भाषा-शैली में उनके महत्व पर अपने शोधपरक दो व्याख्यानों के माध्यम से प्रकाश डालकर नई पीढ़ी को इस क्षेत्र में शोधकार्य करने की उत्साहवर्धक प्रेरणा दी है।

आचार्य कुन्दकुन्द-पुरस्कार सहित अखिल भारतीय स्तर के १३ पुरस्कारों से पुरस्कृत, राष्ट्रपति सहस्राब्दी सम्मान-पुरस्कार से सम्मानित तथा लगभग ३४ ग्रंथों के लेखक-सम्पादक प्रो. जैन सन् १९५६ से ही पाण्डुलिपियों के उद्धार तथा सम्पादन-कार्यों में व्यस्त रहे हैं। इस क्षेत्र में उनका गम्भीर अध्ययन एवं अनुभव है। अतः जब धवल, जयधवल, महाधवल जैसी आगमिक-टीका सम्बन्धी पाण्डुलिपियों के अनुवादक सम्पादक पं. फूलचन्द जी शास्त्री के शताब्दि-समारोह को सार्थक बनाने हेतु उनकी नियमित वार्षिक स्मारक व्याख्यान-माला का प्रसंग आया तो समारोह-समिति ने उनके (श्रद्धेय पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री के) ही परम भक्त एवं विश्वस्त कर्मठ शिष्य तथा सन् १९७७ से श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान के विभिन्न पदों पर कार्य करते आ रहे प्रो. डॉ. राजाराम जी जैन को पाण्डुलिपियों से संबंधित ही दो व्याख्यान प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया। व्याख्यान के विषय की गम्भीरता को देखते हुए यद्यपि उन्हें समय बहुत कम दिया गया, फिर भी उन्होंने समिति के निमंत्रण को सहर्ष स्वीकार किया तथा पाण्डुलिपियों से संबंधित प्रायः सभी पक्षों पर उन्होंने सरस एवं रोचक शैली में

अपने शोध-परक दो व्याख्यान प्रस्तुत कर संस्थान को कृतार्थ किया, इस कारण फाउण्डेशन तथा संस्थान दोनों ही उनके अत्यन्त आभारी हैं। मेरा यह सौभाग्य रहा कि प्रो. राजाराम जी के रूड़की आगमन पर सन् २००५ में मैंने उनके साथ बैठकर इस पुस्तक का आद्योपांत वाचन किया।

इस व्याख्यान माला की अध्यक्षता प्रो. आर. सी. शर्मा (निदेशक, ज्ञान प्रवाह) ने की तथा विशिष्ट अतिथि का स्थान प्रो. परमानन्द सिंह (इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी विद्यापीठ) ने सुशोभित किया। इन मनीषी विद्वानों ने भी पाण्डुलिपियों एवं शिलालेखों को भारतीय प्राच्य-विद्या की अमूल्य धरोहर बतलाते हुए डॉ. जैन के व्याख्यानों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें नई पीढ़ी के शोध-कार्यों के लिये प्रकाश-स्तम्भ बतलाया। अन्य उपस्थित विद्वानों में अनेक साध्वियाँ, श्रवणबेलगोल के भट्टारक-शिष्य, तथा काशी हिन्दु विश्व विद्यालय एवं स्याद्वाद महाविद्यालय, पार्श्वनाथ जैन शोध संस्थान, काशी विद्यापीठ आदि के शोध पदाधिकारियों, शोधार्थियों, तथा प्राध्यापकों के अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठित नागरिक जिज्ञासु महिलाएँ एवं श्रोतागण भी उपस्थित थे और सभी ने व्याख्यानों का सुरुचि पूर्वक रसास्वादन किया, जिससे फाउण्डेशन तथा संस्थान दोनों ने अपने सारस्वत-प्रयत्न को सफल एवं सार्थक माना।

अन्त में—मैं श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्व विद्यालय पुरी (उड़ीसा) के पूर्व-कुलपति तथा अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति प्राप्त प्रो.सत्यव्रत जी शास्त्री, नई दिल्ली के प्रति विशेष रुप से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अतिव्यस्त रहते हुए भी समय निकालकर प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल्यांकन किया तथा उसके लिये पुरोवाक् लिखकर उसके महत्व को वृद्धिगत किया।

हम प्रो.डॉ.(श्रीमती) विद्यावती जैन के भी आभारी हैं, जिन्होंने अस्वस्थ रहते हुए भी उसकी शब्दानुक्रमणिका (Index) तैयार कर ग्रन्थ को सर्वांगीण बनाने में योगदान किया। प्रो. (डा.) फूलचन्द्र जी प्रेमी व्याख्यानमाला का संयोजन शुरू से ही कुशलतापूर्वक करते आ रहे हैं, अतः हम सभी उनके आभारी हैं। प्रो. (डा.) कमलेश कुमार जैन तथा श्री खुशालचन्द जी सिंघई संस्थान के कार्यों में सतत् सहयोगी रहते हैं, अतः वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्राच्य भारतीय इतिहास के निर्माण के लिये अतिमहत्त्वपूर्ण प्रामाणिक सामग्री माने जाने पर भी यह विधा अभी तक उपेक्षित अथवा प्रायः अछूती ही रही है और मेरी दृष्टि से उस दिशा में यह ग्रन्थ प्रथम प्रकाश-किरणों के रूप में प्रतिष्ठित होगा तथा इससे प्रेरित होकर इस श्रृंखला में आगे भी इसी प्रकार के शोध-कार्य होते रहेंगे, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इसी आशा एवं विश्वास के साथ, सादर

अशोक कुमार जैन

ए-१०, हिल व्यू अपार्टमेन्ट
आई.आई.टी. परिसर
रुड़की - २४७ ६६७ (उत्तराखण्ड)

प्राक्कथन

जैन विद्या के मर्मज्ञ विद्वान् प्रो. राजाराम जैन द्वारा विरचित "जैन पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख" शीर्षक ग्रन्थ का विद्वत्समाज को परिचय देते समय मुझे विशेष आनन्द का अनुभव हो रहा है। उन्होंने सितम्बर २६–३०, २००१ ई. में इस विषय पर श्री गणेश वर्णी जैन शोध संस्थान, वाराणसी में दो व्याख्यान दिये थे, उन्हें ही किञ्चित् परिवर्धित कर उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया है। इसमें उनकी लगभग अर्द्धशताब्दी का पाण्डुलिपि विषयक अन्वेषण-अनुसंधान का अनुभव समाहित है।

ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर उन्होंने अनेक कारणों से पाण्डुलिपियों के सम्यक् संरक्षण के अभाव में उनके लुप्त होने, विदेशियों द्वारा भारत के बाहर ले जाने एवञ्च उनके जर्जर हो जाने का उल्लेख किया है और इसका उल्लेख करते-करते अपने मन की व्यथा को व्यक्त किया है, जो न केवल उनकी अपितु, आज भारतीय विद्या के प्रत्येक अध्येता के मन की व्यथा है।

जो बीत गया सो बीत गया। अब जो बचा है, उसे सुरक्षित रखना ही हमारी प्राथमिकता है। इस सन्दर्भ में प्रो. राजाराम जैन ने कतिपय महत्वपूर्ण सुझाव (पृ. ७६–८१) दिए हैं, जिनका शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वयन आवश्यक है। आज भी लाखों की संख्या में पाण्डुलिपियाँ शास्त्र-भण्डागारों में ही नहीं, लोगों के घरों में भी बिखरी पड़ी हैं, जिनकी किसी को जानकारी भी नहीं है, उनके सूचीकरण की तो बात ही क्या ? यह कार्य एक व्यक्ति का नहीं, एक संस्था का भी नहीं, समूचे राष्ट्र का है। ये समस्त पाण्डुलिपियाँ राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं और जैसा कि प्रो. राजाराम जैन ने प्रस्तुत ग्रन्थ में बताया है, अनेक प्रकार की आध्यात्मिक और दार्शनिक जानकारी के साथ-साथ ऐतिहासिक और भौगोलिक जानकारी के प्रामाणिक स्रोत भी हैं। इस विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं इनकी पुष्पिकाएँ और प्रशस्तियाँ, जिनमें लेखकों ने अपने समय के राजाओं-महाराजाओं, सामन्तों, मन्त्रियों तथा श्रेष्ठियों का उल्लेख करने के साथ अपने से पूर्ववर्ती एवं समसामयिक मनीषियों-विचारकों का भी उल्लेख किया है। पाण्डुलिपियों के माध्यम से उपलब्ध जानकारी भारत की सुदीर्घ इतिहास एवं भूगोल के अनुद्घाटित एवं अल्पोद्घाटित पक्षों को उद्घाटित कर सकती है।

यह सन्तोष की बात है कि जैन-परम्परा ने ग्रंथ-लेखन पर विशेष बल दिया। 'शतं वद मा लिख मा लिख' की धारणा को इसने नहीं अपनाया। ग्रंथ लिखना, लिखवाना, प्रतिलिपियाँ बनवाना तथा उन्हें पाठकों को उपहार रूप में देना, इसमें पुण्यदायी माना गया है। इस विषय में राजाराम जी ने उल्लेख किया है पुष्पदन्त की महापुराण की प्रशस्ति का, जिसमें कहा गया है कि भरत एवं नन्न के राजमहलों में साहित्यकारों के साथ-साथ प्रतिलिपिकार भी प्रतिलिपियों का कार्य करते थे। यही कारण था कि अतिविशाल जैन पाण्डुलिपि-वाङ्मय अपने देश में बन गया। विदेशी

आक्रामकों ने तो जो किया सो किया ही, हमारी असावधानी, अज्ञानता और उदासीनता भी इस वाङ्मय को सम्यक्, सुरक्षित न रख पाने में कारण बनीं। अन्यथा बोरों में भर कर पाण्डुलिपियों को जलसमाधि देने की कल्पना भी इस देश में नहीं हो सकती थी।

अनेक बार यह भी देखने में आया है कि लोग अपने घरों में रखी पाण्डुलिपियों को किसी को देना नहीं चाहते, चित्र-प्रतिलिपि बनाने के लिये भी नहीं। लाल वस्त्रों में बंधी सामग्री उनके यहाँ पुरखों से चली आ रही है। वह उनके यहाँ पड़ी रहनी चाहिये-यदि वह उनके यहाँ से चली जायेगी तो कहीं उनका कोई अनिष्ट न हो जाए, इसलिये वे उन्हें किसी को देना नहीं चाहते। इसका एक उपाय है कि उनके यहाँ जा-जाकर उनकी पाण्डुलिपियों की चित्र प्रतिलिपि, माइक्रोफिल्म बना ली जाए। विशेषज्ञ आवश्यक साधन-सामग्री के साथ वहाँ जाकर इस कार्य को सम्पन्न करें। नेपाल की पाण्डुलिपियों के विषय में यही पद्धति अपनाई गई। जर्मन-सरकार द्वारा सञ्चालित इस व्यवस्था के अर्न्तगत पाण्डुलिपि की तीन प्रतियाँ बनायी गयी। एक प्रति उस व्यक्ति को दी गई, जिसके यहाँ से पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई, दूसरी बर्लिन (जर्मनी) के ग्रन्थालय में भेज दी गई और तीसरी काठमाण्डू के ग्रन्थालय को अर्पित कर दी गई। इस पद्धति से नेपाल की समस्त पाण्डुलिपियों की माइक्रोफिल्म तैयार की गई। यह पद्धति भारत की पाण्डुलिपियों के विषय में भी अपनाई जा सकती है।

किञ्च, अनेक बार यह तर्क दिया जाता है कि सभी पाण्डुलिपियों की चित्र-प्रतिलिपि बनाने की क्या आवश्यकता है। एक ही ग्रन्थ की अनेक पाण्डुलिपियाँ हो सकती हैं। अतः ग्रन्थ पर बल देना चाहिए, उसकी पाण्डुलिपि पर नहीं। यहाँ यह प्रश्न होगा कि ग्रन्थ के स्वरूप-निर्धारण के लिये अनेक पाण्डुलिपियों में किसे ग्रहण किया जाए ? पाठ-योजना के लिये सभी पाण्डुलिपियों का अवलोकन आवश्यक है। उसी के आधार पर ग्रन्थ का प्रामाणिक संस्करण सम्भव है। इस दृष्टि से प्रत्येक पाण्डुलिपि महत्त्वपूर्ण है।

एक समय था, जब भारत में पाण्डुलिपियों की खोज और उनके संग्रह के लिये पाण्डुलिपि-संग्रहकर्ता, शासन की ओर से नियुक्त किये जाते थे। उनके माध्यम से पाण्डुलिपियाँ पाण्डुलिपि-संग्रहालयों में सुग्रहीत हुई। उसी तरह की पद्धति वर्तमान-शासन को भी अपनानी चाहिए।

इन पंक्तियों का लेखक जब उड़ीसा में था, वहाँ के प्रचुर पाण्डुलिपि-वाङ्मय की प्रसिद्धि के कारण पाण्डुलिपियों की खोज की ललक उसके मन में जगी। इसके लिए उसने एक योजना बनाई। जिस विश्व विद्यालय में वह कुलपति था, उसके साथ ६६ विद्यालय-महाविद्यालय सम्बद्ध थे। उसने सोचा कि उन विद्यालयों-महाविद्यालयों के प्राचार्यों से अनुरोध किया जाए कि अपने-अपने क्षेत्रों में जहाँ ये संस्थाएँ हैं, वे पता लगायें कि किन-किन के यहाँ पाण्डुलिपियाँ हैं और इसकी जानकारी वे विश्वविद्यालय को प्रेषित करें। इससे बिना व्यय के या अत्यल्प व्यय से ही अपेक्षित जानकारी प्राप्त हो सकेंगी। इस तरह की पद्धति अन्य विश्व विद्यालयों में भी अपनाई जा सकती है।

ब्रिटिश राज के दिनों में और स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक भी पीएच.डी. आदि उपाधियों के लिये शोध हेतु पाण्डुलिपि रूप में स्थित किसी ग्रन्थ के आलोचनात्मक भूमिका सहित संस्करण-सम्पादन-कार्य को विषय रूप में तत्तद् विश्व विद्यालयों द्वारा स्वीकृत किया जाता था। केवल स्वीकृत ही नहीं किया जाता था अपितु शोधार्थियों को इस उद्धार का कार्य करने के लिये प्रोत्साहित भी किया जाता था। पर इधर कुछ नई ही हवा बहने लगी है। इस प्रकार के कार्य को शोध ही नहीं माना जाने लगा है। जबकि असली शोध यही है। जो ग्रन्थ प्रकाश में ही नहीं आया, उसका अनेक पाण्डुलिपियों की सहायता से प्रामाणिक पाठ स्थिर करने और उसकी समीक्षात्मक भूमिका लिखने के लिये शोधार्थी को कितना परिश्रम करना पड़ता है और कितनी सूझबूझ उसे इसमें लगानी पड़ती है, यह कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। इसलिये आवश्यक है, हवा की दिशा बदली जाए।

प्रो. राजाराम जैन ने महाकवि पुष्पदन्त, विबुध श्रीधर, रइधू आदि अनेक साहित्यकारों का उल्लेख अपनी इस कृति में किया है। उनकी कुछ कृतियाँ तो प्रकाशित हुई हैं, कुछ अभी अप्रकाशित हैं। इस पंक्तियों के लेखक का सुझाव है कि एक-एक साहित्यकार को लेकर उसका समय, वाङ्मय, प्रकाशित अथवा अप्रकाशित, एक स्थान पर ग्रन्थमाला के रूप में प्रकाशित किया जाए। इससे कम से कम उन मनीषियों का, जो भारतीय मनीषा के स्तंभ हैं, वाङ्मय तो प्रकाश में आ जाएगा।

सबसे बड़ी कठिनाई इस समय यह है कि दिशाएँ अनेक हैं, काम करने वाले कम हैं। जैन समाज साधन उपलब्ध कराने के माध्यम से यदि कुछ विद्वानों को इस कार्य के लिये प्रेरित कर सके, तो वह अपने दायित्व का निर्वाह ही करेगा।

"जैन पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख" पाण्डुलिपि के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण अवदान है। इसमें अनेक भूली-बिसरी कृतियों की महत्त्वपूर्ण जानकारी है। इस जानकारी को प्रस्तुत कर अपने देश के मूर्धन्य मनीषी पाण्डुलिपि-शास्त्र के अनन्य विद्वान् प्रो. राजाराम जैन ने विद्वत्समाज का जो उपकार किया है, उसे शब्दों की परिधि में समेट पाना सम्भव नहीं।

सत्यव्रत शास्त्री
मानद आचार्य, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,
पूर्व कुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय,
पुरी (उड़ीसा)

नई दिल्ली
०३ फरवरी, २००४

दो शब्द

मैं पण्डित-शिरोमणि पं. फूलचन्द्रजी सिद्धांत शास्त्री की पावन-स्मृति में स्थापित सिद्धांताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री फाउण्डेशन की प्रबंधकारिणी समिति, रुड़की (उत्तराखण्ड) तथा गणेश वर्णी दिगम्बर जैन, संस्थान, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) के मंत्री प्रो. डॉ. अशोक कुमार जैन के प्रति अपना सादर आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने पं. फूलचन्द्रजी के शताब्दी समारोह-वर्ष के क्रम में आयोजित स्मारक व्याख्यान-माला के लिये मुझे वाराणसी में २९–३० सितम्बर २००१ को सानुरोध आमंत्रित किया।

श्रद्धेय पण्डित फूलचन्द्र जी २०वीं सदी के जैन साहित्य-निर्माताओं एवं धवल, महाधवल तथा जयधवल संबंधी पाण्डुलिपियों के उद्धारक, अनुवादक एवं समीक्षक विद्वानों में प्रथम पंक्ति के अग्र पुरुष थे। मेरा यह सौभाग्य था कि मुझे सन् १९४५ से लेकर उनके जीवनकाल के अन्त तक उनका स्नेह एवं घना आशीर्वाद प्राप्त रहा। अतः उनकी पावन-स्मृति में उक्त व्याख्यान-माला के माध्यम से मुझे उनके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इससे मेरा मन कृतकृत्य और अत्यंत प्रमुदित है।

धवला-टीका के अंग्रेजीकरण करने-कराने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ प्रो. डॉ. अशोक कुमार जैन, जो कि स्वयं भौतिकी-शास्त्र विषय के अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति के विचारक विद्वान् होते हुए भी श्रमण जैन-विद्या के रसिक ही नहीं, अपितु इस क्षेत्र में भी अन्य कुछ विशेष योगदान देने का संकल्प किये हुए हैं, के प्रति भी मैं पुनः अपना आभार व्यक्त करता हूँ कि जिन्होंने मुझे पाण्डुलिपियों की खोज एवं सम्पादन-मूल्यांकन संबंधी अपने अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने के लिये एक सारस्वत-मंच प्रदान किया।

०१ फरवरी, २००४
बी-५/४० सी, सेक्टर ३४
धवलगिरि
पो. नोएडा - २०१ ३०७ (यू.पी.)

प्रो. डॉ. राजाराम जैन
पूर्व-प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग
(मगध विश्व विद्यालय सेवान्तर्गत),
ह.दा.जैन कॉलेज, आरा (बिहार)

विषयानुक्रम

प्राक्कथन – प्रो. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री – VI
प्रकाशकीय – प्रो. डॉ. अशोक कुमार जैन – IX
लेखक के दो शब्द – प्रो. डॉ. राजाराम जैन – XI
विषयानुक्रम – XII

ग्रन्थ-विषय १ – ८३
शब्दानुक्रमणिका – ८५
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची – १०५

पाण्डुलिपियों का महत्वः – १
पाण्डुलिपिः उसकी आवश्यकता, प्रादुर्भाव एवं विकास – १
पाण्डुलिपियों की लेखनोपकरण–सामग्री – २
ई.पू. की सदियों में भोजपत्र, ताड़पत्र एवं कागज के प्रयोग – ४
–भोजपत्र प्रयोग – ४
–ताड़पत्र प्रयोग – ६
ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों का आकृति मूलक वर्गीकरण – ६
–गण्डी – ६
–कच्छपी – ६
–मुष्टि – ७
–संपुटक – ७
–सृपाटिका/सम्पुटफलक अथवा छेद – ७
राजप्रश्नीय–सूत्र में वर्णित पाण्डुलिपि की संरचना – ७
–कागज की पाण्डुलिपियॉं – ८
–कागज निर्माण–घरेलू उद्योग धंधा – ८
–कागज की सचित्र पाण्डुलिपियॉं – ८
भारतीय प्राच्य-लिपियाँ (Scripts) – ९
–ब्राह्मी–लिपि–पाण्डुलिपियॉं – ९
–खरोष्ठी–लिपि–पाण्डुलिपियॉं – १०
–प्रादेशिक, कूटलेखन एवं रहस्यपूर्ण लिपियॉं – ११
–आक्रान्ताओं के नाम पर प्रचलित लिपियॉं – ११
–ब्राह्मी तथा खरोष्ठी–लिपि में प्राचीन मूल–पाण्डुलिपियाँ अनुपलब्ध
–हूण–लिपि, खास्यलिपि आदि – ११
–अर्धमागधी आगमों में वर्णित विविध लिपियॉं – १२

—ललित—विस्तरा में वर्णित विविध लिपियाँ — १२

जैन साहित्य लेखन-परम्परा — १३

—श्वेताम्बर—परम्परा — १४

—दिगम्बर—परम्परा — १४

पाण्डुलिपि का प्रारम्भिक रुप—शिलालेख एवं उनका महत्व — १५

—खारवेल—शिलालेख एवं उसका ऐतिहासिक महत्व — १७

—कर्नाटक के जैन—शिलालेख — २८

—कर्नाटक के जैन केन्द्र — २८

—कर्नाटक के महान साहित्यकार — २८

—कर्नाटक के जैन सेनापति — ३०

गंग-वंश और उसके संस्थापक आचार्य सिंहनन्दि — ३१

—राष्ट्रकूट—वंश — ३२

—कर्नाटक की यशस्विनी महिलाएँ — ३३

होयसल-वंश के संस्थापक सुदत्त-वर्धमान — ३४

—दक्षिण का चालुक्य—वंश — ३५

—घट्याला (जोधपुर) का कक्कुक—शिलालेख — ३५

जैन-पाण्डुलिपियाँ: ताड़पत्रीय एवं कर्गलीय प्रशस्तियों में उपलब्ध कुछ रोचक सामग्री — ३६

—कुछ उपलब्ध महत्वपूर्ण जैन—पाण्डुलिपियाँ — ४७

सम्राट शाहजहाँ की २४ हजार प्रिय पाण्डुलिपियाँ — ४६

जैन पाण्डुलिपियों का प्राच्य फारसी—भाषा में अनुवाद — ४६

मुस्लिम बादशाहों द्वारा जैन—लेखकों का सम्मान — ४६

फारसी—भाषा में लिखित ऋषभ—स्तोत्र — ५०

हमारा विस्मृत अथवा त्रुटित पाण्डुलिपि—साहित्य — ५८

प्रकाशित कुछ पाण्डुलिपि—सूचियाँ — ६०

विदेशों में भारतीय पाण्डुलिपियाँ — ६१

मास्को (रूस) के प्राच्य शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित जैन पाण्डुलिपियों की सूची — ६२

विविध सन्दर्भों से ज्ञात ऐतिहासिक मूल्य की लुप्त—विलुप्त अथवा अनुपलब्ध कुछ प्रमुख जैन पाण्डुलिपियाँ — ६३

भारतीय वाङ्मय का ऐतिहासिक मूल्य का एक गौरव—ग्रंथ

—कातन्त्र व्याकरण एवं — ६४

—पासणाहचरिउ आदि — ६५

जैन—पाण्डुलिपियों के प्रकाशन में गणेश वर्णी दिगम्बर जैन शोध—संस्थान का योगदान — ६७

—देवीदास—विलास — ६७
—भद्रबाहु चाणक्य चन्द्रगुप्त कथानक — ६८
भौगोलिक दृष्टि से पाण्डुलिपियों का महत्व — ६८
अपभ्रंश—पाण्डुलिपियों में वर्णित कुछ रोचक तथ्य — ७०
समस्यापूर्ति परम्परा — ७०
समाज में कवियों एवं लेखकों के लिये आश्रयदान — ७१
कवियों के लिये सार्वजनिक सम्मान — ७४

जैन साहित्य तथा जैन—पाण्डुलिपियों के लेखन में कायस्थ — विद्वानों का योगदान — ७४
व्यक्तियों के नाम रखने की मनोरंजक घटना — ७५
पाण्डुलिपियों के प्रतिलिपि—कार्य का महत्व — ७५
पाण्डुलिपियों का दुर्भाग्य — ७६
पाण्डुलिपियों के लेखकों द्वारा दी गई चेतावनियाँ तथा उनकी विनम्र प्रार्थनाएँ — ७८
पाण्डुलिपियों की सुरक्षा कैसे की जाये — ७९
पाण्डुलिपियों की खोज जितनी कठिन है, उससे भी अधिक कठिन है उनका प्रकाशन — ८१
सरस्वती—पुत्र (पं.फूलचन्द्र जी सिद्धांत शास्त्री) की शताब्दी वर्ष की पुण्यः स्मृति में . — ८२

प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की अमूल्य धरोहर- जैन-पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख

पाण्डुलिपियों का महत्वः

पाण्डुलिपियाँ (अर्थात् अप्रकाशित प्राचीन हस्तलिखित पोथियाँ अथवा ग्रन्थ) किसी भी समाज एवं देश की अमूल्य धरोहर मानी गई हैं क्योंकि वे उनके दीर्घ तपस्वी-साधक एवं चिन्तक-आचार्य-लेखकों द्वारा अनुभूत और परम्परा-प्राप्त ज्ञान-गरिमा की प्रतीक होती हैं। साथ ही, उनके निरन्तर स्वाध्याय, पठन-पाठन, मनन एवं चिंतन की प्रवृत्ति, मानसिक एकाग्रता, आध्यात्मिक उत्थान, बौद्धिक-विकास, सांस्कृतिक उन्नयन, कलात्मक अभिरुचि और साहित्यिक-प्रतिभा आदि की परिचायिका भी होती हैं।

यही नहीं, उनके आदि एवं अन्त में उपलब्ध प्रशस्तियों (Eulogies) एवं पुष्पिकाओं (Colophons) में पूर्ववर्ती अथवा समकालीन इतिहास, संस्कृति, समाज एवं साहित्य तथा साहित्यकारों आदि के उल्लेखों के कारण वे देश एवं समाज के विविध पक्षीय इतिहास के लेखन तथा राष्ट्रिय अखण्डता और भावात्मक एकता (National Unity and Emotional Integration) की प्रतीक भी होती हैं। राष्ट्रिय इतिहास एवं संस्कृति को सर्वांगीण बनाने में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

इनके अतिरिक्त भी, उनमें लेखन–सामग्री में प्रयुक्त विविध उपकरण, (यथा-पत्र, कम्बिका, डोरा, ग्रन्थि, लिप्यासन, छन्दण, मसी, लेखनी आदि) एवं लिपि की विविध शैलियाँ, चित्रकला में प्रयुक्त विविध रंग और उनकी कलात्मक अभिरुचि की अभिव्यक्ति तथा उनके विकास की दृष्टि से भी उनका ऐतिहासिक महत्व है।

जैन-परम्परा में जिनवाणी को सुरक्षित रखने का मूल आधार होने के कारण पाण्डुलिपियों को प्रारम्भ से ही पूज्यता तथा विशेष आदर-भाव मिला है। उन्हें प्राणों से भी प्यारी और पवित्र धरोहर मानकर जैनों ने अपने तीन दैनिक आराध्यों-देव, शास्त्र एवं गुरु में से विविध पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित शास्त्रों को भी समान रूप से पूज्य मानकर उनकी सुरक्षा के लिये प्रारम्भ से ही अनेकविध प्रयत्न किये हैं। इसके लिये आन्ध्र, कर्नाटक, राजस्थान, विदर्भ एवं मालवा के लोमहर्षक उदाहरण स्मरणीय हैं।

पाण्डुलिपिः उसकी आवश्यकता, प्रादुर्भाव और विकास

प्राकृतिक विपदाओं, जनसंख्या-वृद्धि तथा विदेशी आक्रान्ताओं के कारण सामाजिक जीवन में अस्तता-व्यस्तता-जन्य सांसारिक जटिल समस्याओं के कारण उत्पन्न मानसिक अस्थिरता और उसके कारण विस्मृति के उत्पन्न होने की आशंका से कण्ठ-परम्परा द्वारा प्राप्त ज्ञान को सुरक्षित रखने की आवश्यकता का जब अनुभव किया गया, तब उसे जिन प्रयत्नसाध्य उपलब्ध उपकरणों पर लिपिबद्ध किया गया, उसे **"पाण्डुलिपि"** के नाम से

अभिहित किया गया। इस "पाण्डुलिपि" शब्द में दो पदों का मेल है-पाण्डु एवं लिपि, जिसका अर्थ है-पाण्डुर-वर्ण वाले आधार अथवा उपकरण-पाषाण अथवा पत्र पर किन्हीं मान्य-संकेतों के द्वारा अपेक्षित ज्ञान को किसी विशेष कठोर नुकीले उपकरण (लेखनी) के द्वारा उत्कीर्णित कर अथवा किसी नरम लेखनी द्वारा किसी विशेष रंगीले तरल पदार्थ द्वारा लिखकर उसे सुरक्षित रखना। इस प्रकार भारत में पाण्डुलिपियों का प्रादुर्भाव हुआ। गवेषकों के अनुसार उसका काल अनुमानतः ईसा-पूर्व पॉचवी सदी के आसपास माना जा सकता है।

पाण्डुलिपियों की लेखनोपकरण - सामग्री

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि पाण्डु अथवा पाण्डुर-वर्ण (पीताभ-धवल) वाला प्रारम्भिक आधार क्या रहा होगा ? इस विषय पर क्या-क्या गवेषणाऐं हुई, उनकी सम्पूर्ण जानकारी तो उपलब्ध नहीं, किन्तु हमारी दृष्टि से पाण्डुलिपि तैयार करने का प्रारम्भिक भारतीय आधार पाषाण था। ईसा-पूर्व पाँचवी सदी का **वडली** (अजमेर) शिलालेख तथा ईसा-पूर्व तृतीय सदी के **सम्राट अशोक** तथा ई०-पू० दूसरी सदी का **खारवेल-शिलालेख** उसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। खारवेल-शिलालेख भुवनेश्वर (उड़ीसा) की उदयगिरि-खण्डगिरि पहाड़ी पर स्थित हाथीगुम्फा में उपलब्ध हुआ है। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार "हाथीगुम्फा का गठन अति असाधारण है। उसमें कोई निर्दिष्ट आकार नहीं है। इसमें हाथी के चार प्रकोष्ठ और स्वतंत्र बरामदा भी था। गुफा का भीतरी भाग ५२ फीट लम्बा और २८ फीट चौड़ा है। द्वार की ऊँचाई ११ १/२ फीट है। उसी में खारवेल का विश्व-विख्यात् उक्त शिलालेख मिला है। इस शिलालेख में उनका जीवन-चरित्र लिपिबद्ध हुआ है। समय-समय पर यह शिलालेख असम्पूर्ण के समान बोध देता है।" (दे. काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका ८/३ सन् १९२८)

तत्पश्चात् लेखनोपकरण सामग्री के विकास की परम्परा चलती रही और (१) भोजपत्र, (२) ताड़पत्र, (३) कागज, (४) कपड़ा, (५)काष्ठ-पट्टिका, (६)चमड़ा, (७) ईंट, (८) सोना, (९) ताँबा, (१०) पीतल, (११) चाँदी, (१२) काँसा, (१३) लोहा तथा उनके मिश्रण से निर्मित उपकरणों में से कुछ उपकरण, हमारे आगम-शास्त्रों, मन्त्रों और ज्ञान-विज्ञान तथा इतिहास, संस्कृति एवं सामाजिक-विचारों को विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप में लिपिबद्ध करने के ठोस साधन बनें।

उक्त सामग्री को देखकर यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि पत्थरों तथा धातुओं पर लिखित सामग्री को पाण्डुलिपि कैसे माना जाये ? इसके समाधान में केवल यही कहा जा सकता है कि तत्कालीन सहज उपलब्ध प्राकृतिक पाण्डुर-वर्ण अथवा उसके समकक्ष वर्ण वाली वस्तु पर अंकित, आधार-सामग्री को **पाण्डुलिपि** मान लिया गया। भले ही वह पत्थर की हो अथवा पेड़ों की छाल या पत्तों की। उस समय उसका पाण्डुलिपि के रूप में जो नामकरण हुआ, यह ऐसा रूढ़ होता चला गया कि उक्त सभी तो पाण्डुलिपि कहलाती ही रहीं, वर्तमान में प्रेस में छपने के लिये दी जाने वाली प्रेस-सामग्री या

प्रेस-कॉपी भी **''पाण्डुलिपि''** कही जाने लगी।

जैन-परम्परा में लेखन-कार्य हेतु पूर्वोक्त आधारभूत सामग्रियों में से चमड़ा, ईंट एवं लोहा छोड़कर अल्पाधिक मात्रा में उक्त प्रायः समस्त सामग्रियों का उपयोग किया गया है। इन उपकरणों के उल्लेख प्राचीन जैन-ग्रन्थों में एक साथ एक ही स्थान पर नहीं मिलते, बल्कि प्रासंगिक अथवा आनुषंगिक रूप से यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उनमें इन तथ्यों की स्थिति लगभग वैसी ही है, जिस प्रकार कि समुद्रतल में छिपे मोतियों अथवा समुद्री या नदी-तटों की बालू में बिखरे हुये सर्षप-बीजों की। फिर भी, इन सामग्रियों की खोज जितनी कठिन है, उतनी ही रोचक एवं मनोरंजक भी। (एतद्विषयक कुछ संदर्भ-संकेत आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं)। इस दिशा में अभी एकबद्ध विस्तृत कार्य नहीं हो सका है, जब कि जैन-पाण्डुलिपियों की गौरवशाली ऐतिहासिक परम्परा को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने की महती आवश्यकता है।

यह परम गौरव का विषय है कि पाण्डुर-वर्ण के पाषाण पर उत्कीर्णित एक **प्राकृत-शिलालेख** भारत की सम्भवतः **सर्वप्रथम लिखित पाण्डुलिपि** है, जिसे भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के ८४ वर्ष बाद अर्थात् वीर निर्वाण संवत् ८४ (ई०पू० ४४३) में उन्हीं की स्मृति में उनके किसी श्रद्धालु समाज द्वारा **ब्राह्मी-लिपि** में उत्कीर्ण कराया गया था [१]। इस लेख में कुल ४ पंक्तियाँ हैं, जो पाषाण के तीन ओर उत्कीर्णित हैं।

इस प्रकार आधार-सामग्री, लिपि-शैली एवं वीर-निर्वाण संवत् के स्पष्ट उल्लेख होने के कारण वह अभिलेख न केवल जैन समाज के लिये गौरव का विषय है, अपितु हमारे राष्ट्र के लिये ऐतिहासिक महत्त्व का एक प्रामाणिक दस्तावेज भी। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, वह अभिलेख अजमेर (राजस्थान) के पास **"वडली"** नामक ग्राम में मिला है। काल के प्रभाव से वह कुछ क्षतिग्रस्त हो चुका है, फिर भी, महामान्य पुरातत्त्ववेत्ता तथा प्राच्य लिपि-विद्या के महापण्डित **पं. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा** तथा **डॉ. राजबलि पाण्डेय** ने सावधानी पूर्वक पढ़कर उसे भारत का प्राचीनतम ऐतिहासिक अभिलेख बतलाया है।

कलिंग के भीषण युद्ध के बाद, राजपरिवार में अकेली जीवित तथा क्रोध से तमतमायी **राजकुमारी अमीता** की तीव्र-भर्त्सना से मर्माहत होकर जब **सम्राट अशोक** का एकाएक हृदय-परिवर्तन हो गया, तभी उसने अपनी रणनीति बदलकर **''रणयुद्ध''** के स्थान पर **''धर्मयुद्ध''** का नारा लगाया। तत्पश्चात् विश्वशान्ति की कामना से उसने सर्वसुलभ पीताभ-धवल-पाषाण पर प्राकृत-भाषा एवं ब्राह्मी तथा खरोष्ठी-लिपियों में अपने मंगलकारी विचारों अथवा अध्यादेशों को टंकित कराकर भारत भर में उन्हें प्रचारित कराया था।

---

१. वीराय भगवत चतुरासितिवस...............
प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह खण्ड प्रथम (जयपुर, १९८२) पृ. १८०–१८१

ईसा-पूर्व दूसरी सदी के हाथीगुम्फा-शिलालेख में चर्चा आती है कि कलिंग का चक्रवर्ती जैन **सम्राट खारवेल** १५ वर्ष की आयु में युवराज-पद प्राप्त करने के पूर्व, लेख, रूप, गणना, व्यवहार एवं विधि में विशारद (पण्डित) हो गया था [२]। इस उल्लेख से यह विदित होता है कि लेखन की परम्परा खारवेल के समय तक श्रमण—संस्कृति में पर्याप्त विकसित एवं सार्वजनीन होने लगी थी।

ई.पू. की सदियों में भोजपत्र,ताड़पत्र एवं कागज के प्रयोग

पाण्डुलिपि तैयार करने सम्बन्धी परवर्त्ती उपकरणों में भोजपत्र, ताड़पत्र एवं कागज का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भारत में कागज के निर्माण की सर्वप्रथम सूचना यूनानी—स्रोतों से मिलती है। सम्राट **सिकन्दर** के सेनापति **निआर्कस** (ई.पू. ३२० वर्ष) ने लिखा है कि "भारतीय प्रजा रुई तथा चिथड़ों को कूटपीस कर कागज बनाती है। सम्राट **चन्द्रगुप्त मौर्य** (प्रथम) के शासनकाल में पाटलिपुत्र में ई.पू. चतुर्थ सदी में **एथेंस** (यूनान) के राजदूत के रूप में आए **मेगास्थनीज** (ईसा-पूर्व ३०५) ने भी उसका समर्थन किया है। इससे विदित होता है कि ईसा-पूर्व की चौथी-तीसरी सदी में भारत में कागज का आविष्कार भी हो गया था और उस समय कागज तथा भोजपत्र दोनों का ही प्रयोग होने लगा था। किन्तु उसका उपयोग किसने किस प्रकार किया, इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं होती। भारत में आज ई.-पू. की कागज अथवा भोजपत्र की कोई पाण्डुलिपि उपलब्ध भी नहीं है। इसका कारण सम्भवतः यही रहा होगा कि वे दोनों ही सड़ने-गलने वाले पदार्थ थे, अतः बहुत सम्भव है, उन पर लिखित पाण्डुलिपियाँ प्राकृतिक विपदाओं या अन्य कारणों से नष्ट हो चुकी हों ? वस्तुतः यह गम्भीर खोज का विषय है।

भोजपत्र -

भारतीय प्राच्य संस्कृति में भोजपत्र को लेखनोपकरण की दृष्टि से शुद्ध एवं उपयोगी माना जाता था। महाकवि **कालिदास** के समय में लेखन-सामग्री का सर्वाधिक व सुविधाजनक साधन भोजपत्र ही था। यही कारण है कि उनकी एक महिला -पात्र-**उर्वशी** ने अपने प्रेमी पुरुरवा को भोजपत्र पर प्रेमपाती लिखकर भेजी थी। वह चितकबरा था, इसीलिये विदूषक ने उसे साँप की केंचुली समझ लिया था। वस्तुतः भोजवृक्ष की बाहिरी छाल में कागज जैसी पतली अनेक परतें होती हैं, जिनपर हल्के रक्त -वर्ण की चित्तियाँ रहती हैं। इसी कारण वे साँप की केंचुली के समान दिखाई देती हैं। वह बहुत ही सुकुमार होता है, इसीलिये कुछ वनस्पति-शास्त्रियों ने भोजवृक्ष को बहुत ही शर्मीला और कान्ता-सदृश कहा है।

---

२. ततो लेख-रूप-गणना-व्यवहार-विधि-विसारदेन सबविजावदातेन नववसानि योवरजं पसितं-(खारवेल-शिलालेख पंक्ति—२)

इतिहासकारों के अनुसार प्राचीनकाल में दस्तावेज आदि भी भोजपत्र पर ही लिखे जाते थे। इसीलिये उसे (दस्तावेज को) संस्कृत में **भूर्जम्** भी कहते हैं। इसी आधार पर उसे भोज कहने लगे।

तीसरी सदी (ईस्वीं) में भोजपत्रों पर लिखित **धम्मपद**-ग्रन्थ भी **तुर्किस्तान** में मिला था। अविभाजित काश्मीर के गिलगित के समीपवर्ती नौपुर ग्राम में भी सन् १६३१ के आसपास अनेक भोजपत्रीय पाण्डुलिपियाँ भूमि में गड़ी हुई एक पेटिका में एक चरवाहे को मिली थीं। **गिलगित** में मिलने के कारण उन पाण्डुलिपियों का नामकरण भी **गिलगित-मैन्युस्क्रिप्ट्स** पड़ गया। इन्हें छठवीं-सातवीं सदी (ईस्वीं) का बताया जाता है। इतिहास की दृष्टि से इनका विशेष महत्व है।

भोजपत्र को संस्कृत में **लेख्यवृक्ष भी** कहते हैं क्योंकि प्राचीनकाल में ज्ञानराशि को अंकित करने के लिये सुकुमार होने के कारण भोजवृक्ष की छालों को काम में लाया जाता था। उसे पवित्र मानकर धार्मिक-कार्यों तथा जन्म-पत्री आदि बनाने में भी उसी का प्रयोग किया जाता था। भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से बचने के लिये मन्त्रादि लिखकर उन्हें तावीज में रखकर बाँधा जाता था। आज भी उसके प्रति समाज में वही विश्वास है।

भारत में भोज-वृक्ष हिमालय की ठण्डी चोटियों पर मिलते हैं। आधुनिक वनस्पति-शास्त्र में इसे **बेतुला अतिलिस डी-डौन** कहते हैं। संस्कृत में उसे **भूर्ज** (भूः ऊर्जाः अस्य, ऊर्जः बल प्राणमयोः) कहते हैं। अंग्रेजी में वही **बर्च** या जर्मन भाषा में **बर्चा** या **बर्क** कहलाता है। लिथुआनियन में **"वेरजस"** और स्लावोनियन में उसे **ब्रेजा** कहते हैं। ये सभी शब्द भूर्ज शब्द से मेल खाते हैं। भोजवृक्ष की नौकाएँ भी बहुत हल्की किन्तु ठोस बनती थीं। पुराकाल में भोजपत्र के कपड़े भी बनाये जाते थे।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में इसे कुष्ठनाशक तथा मेह, पाण्डु, कफ तथा मेद को नष्ट करने वाला बताया गया है। इसे विविध दवाओं के बनाने के काम में भी लाया जाता है।

भोज-वृक्ष की दो जातियाँ होती हैं—(१) विटुला-यूटिलिस और (२) विटुला-एलनोयडिस। इनमें से प्रथम जाति का भोजवृक्ष हिमालय की ऊँची चोटियों पर तथा दूसरी जाति का भोजवृक्ष कम ऊँचाई की पहाड़ियों पर उत्पन्न होते हैं। ईस्वी सन् के प्रारंभिक वर्षों में भी सम्भवतः भोजपत्र पर पाण्डुलिपियाँ लिखी जाती रहीं। ऐसा विदित हुआ है कि उन पर लिखित बौद्धों एवं वैदिकों की कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध हुई हैं, किन्तु संभवतः जैनियों की नहीं। **हिमवन्त-थेरावली** के एक उल्लेख के अनुसार **सम्राट खारवेल** के पास भोजपत्र पर लिखित एक जैन-पोथी थी, यद्यपि प्राच्य विद्याविद् **मुनिश्री पुण्यविजय जी** ने उक्त उल्लेख को केवल कल्पनाधारित ही बतलाया है [३]।

---

३. प्रा.भा.श्र.सं.पृ. ४

भोजपत्र पर लिखित कुछ भारतीय पाण्डुलिपियाँ पूना, लाहौर, कलकत्ता, तिब्बत, लन्दन, आक्सफोर्ड, वियेना एवं बर्लिन के ग्रन्थागारों में सुरक्षित हैं, किन्तु **प्रो.एस. एम. कात्रे** के अनुसार वे १५वीं सदी ईस्वी के पूर्व की नहीं हैं [४]।

ताड़पत्र-प्रयोग

प्राचीन काल में पाण्डुलिपियों के लिए ताड़पत्र सबसे अधिक सुविधा जनक माना गया। क्योंकि एक तो वह टिकाऊ होता था, दूसरे, उसकी लम्बाई एवं चौड़ाई पर्याप्त होती थी। पत्तों की दोनों नसों के बीच के भाग को आवश्यकतानुसार काट कर उन्हें पानी में भिगो दिया जाता था। फिर, उन्हें सुखाकर कौड़ी, शंख या किसी चिकने पत्थर से रगड़कर उसे चिकना बना-बनाकर, उस पर काजू के तेल का लेप किया जाता था। तत्पश्चात् किसी नुकीले उपकरण से उस पर खोद-खोदकर लिखा जाता था। इस प्रक्रिया में काष्ठपट्टिका पर अक्षर खोदकर स्याही लिपे हुये ताड़पत्र पर उन्हें छाप दिया जाता था, यह पद्धति उत्तर-भारत में प्रचलित थी। लेखनी से ताड़पत्र पर पहले अक्षर उकेर कर फिर उनमें काला रंग भर दिया जाता था, यह प्रक्रिया दक्षिण भारत में प्रचलित थी। [५]

चीनी-यात्री **ह्यूनत्सांग** के अनुसार बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद ई. पू. तीसरी सदी में जब **वैशाली** में द्वितीय बौद्ध-संगीति हुई, तब त्रिपिटिक का लेखन ताड़-पत्रों पर ही किया गया था [६]। किन्तु वे मूल पाण्डुलिपियाँ वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं।

वर्तमान में भारत में जो भी ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियाँ मिलती हैं, वे ११वीं १२वीं सदी के पूर्व की नहीं हैं [७]। इसके पूर्व की पाण्डुलिपियाँ या तो नष्ट हो गईं, अथवा विदेशों में ले जाई गइँ होंगीं [८]। वस्तुतः यह गम्भीर खोज का विषय है।

ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों का आकृति-मूलक वर्गीकरण

ताड़पत्र दो प्रकार के होते हैं–(१) **खरताड**, जो अल्पकाल में ही चटकने लगता है। वह राजस्थान, गुजरात एवं सिन्ध में पाया जाता है, और (२) **श्रीताड,** जो **म्यौंमार** (बर्मा) एवं दक्षिण-भारत में पाया जाता था और पाण्डुलिपियों के लिखने के लिये अनुकूल माना जाता था।

दशवैकालिक हारिभद्रीय-टीका [६] में ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों की रोचक जानकारी दी गई है। उसमें उनका ५ प्रकार से आकृतिमूलक-वर्गीकरण किया गया है–

(१) गंडी– जो चौड़ाई, लम्बाई एवं मोटाई में समान (Rectangular) हो।

(२) कच्छपी– जो कछुवे के समान मध्य में विस्तीर्ण तथा प्रारम्भ एवं अन्त में

४. Introduction to Indian Textual Criticism P.5

५. पाठालोचन के सिद्धांत– कन्हैया सिंह पृ. २४२

६. वही०

७. वही०

८. वही.

६. प्रा.भा.श्र.सं.पृ. ५

पतली हो।

(३) मुष्टि– जो लम्बाई में चार अंगुल अथवा वृत्ताकार हो अथवा चार अंगुल लम्बी तथा चार कोनों वाली हो।

(४) संपुटक– जो दो काष्ठ-फलकों में बँधी हुई हो। और,

(५) सृपाटिका/सम्पुटफलक अथवा छेद-पाटी – जो पतली किन्तु विस्तृत हो और जो आकार में चोंच के समान हो।

ताड़पत्र की इन पाण्डुलिपियों को **''पोत्थयं''** भी कहा गया है– जिसका अर्थ है–पोथी अथवा पुस्तक अथवा धार्मिक ग्रंथ।

राजप्रश्नीय-सूत्र में ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि की संरचना के विषय में सुन्दर वर्णन मिलता है। उसके अनुसार सूर्याभदेव के व्यवसाय-सभा-भवन (Auditorium for Business Meetings) में एक ऐसी पाण्डुलिपि सुरक्षित थी, जिसके आगे-पीछे के आवरण पृष्ठ (पुट्ठे) **रिष्टरत्न** से जटित थे, जिसकी **कम्बिका** (ऊपर तथा नीचे की ओर लगी लकड़ी की पट्टी) रिष्ट नामक रत्नों से जटित थी, जो तप्तस्वर्ण से बनें **डोरे**, नाना मणि जटित **ग्रन्थी**, वैडूर्य-मणि द्वारा निर्मित **लिप्यासन** (अर्थात् दवात), रिष्ट नामक रत्न द्वारा निर्मित उसका **ढक्कन**, शुद्ध स्वर्ण-निर्मित **श्रृंखला**, रिष्टरत्न द्वारा निर्मित **स्याही**, बज्ररत्न द्वारा निर्मित **लेखनी** और रिष्टरत्नमय अक्षरों द्वारा लिखित **धर्मलेख** से युक्त थी [१०]।

उक्त वर्णन में अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती। क्योंकि वर्तमान में भी उसी प्रकार की रत्नजटित कुछ कर्गलीय अमूल्य जैन पाण्डुलिपियाँ जैन शास्त्र-भण्डारों, एवं जैनेतर पाण्डुलिपियाँ जैनेतर शास्त्र-भण्डारों में सुरक्षित हैं।

ताड़पत्र की प्रतियाँ आकृति में छोटी–बड़ी सभी प्रकार की मिलती हैं। उसकी सबसे लम्बी प्रति आचार्य प्रभाचन्द्र कृत **प्रमेयकमलमार्तण्ड** की है, जो जैन-न्याय का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना गया है। वह ३७ इंच लम्बी है, जो **पाटन (गुजरात)** के एक श्वेताम्बर जैन शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित है।

जैन समाज जैन-पाण्डुलिपियों को आक्रान्ताओं से किस प्रकार सुरक्षित रखती थी, इसका एक उदाहरण **श्रवणबेलगोल के भट्टारक स्वामी चारुकीर्त्तिजी** ने हमारी विद्वत्परिषद् के अधिवेशन (१६ दिसम्बर २०००) के अवसर पर दिया था। **षट्खण्डागम की धवला, महाधवला एवं जयधवला की टीकाएँ** ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों में लिखित थी तथा वे श्रवणबेलगोल के मठ में सुरक्षित थीं किन्तु किन्हीं विशिष्ट कारणों से उन्हें **मूडबिद्री-मठ** में स्थानांतरित कर दिया गया था। उनको अति सुरक्षित रखने की दृष्टि से वहाँ के मुख्य मन्दिर की मुख्यवेदिका के ऊपर लगी हुई एक ठोस लकड़ी को कुछ खोकला कर उसी में उनकी पाण्डुलिपियों को रख दिया गया था। कुछ वर्षों के बाद ही अगली पीढ़ी की स्मृति से वे ओझल हो गई।

---

१०. राजप्रश्नीय सूत्र सं.१८५ व्यावर–संस्करण पृ. १०३–१०४

एक बार जब लगातार बेहद वर्षा हुई और छत चूने लगी, तब वह वर्षा-जल उस लकड़ी में भी प्रवेश कर गया और उसी के प्रवाह में पाण्डुलिपियों के अंश भी बहकर भूमि पर गिरने लगे। पुजारी ने जब भट्टारक जी को इसकी सूचना दी, तब उन्होंने उस लकड़ी को खुलवाकर देखा तो उसमें वही **धवल, महाधवल, एवं जयधवल** की महत्वपूर्ण टीकाएँ थीं। उसके बाद कैसे-कैसे उनका देवनागरी में प्रतिलिपि-कार्य किया गया, उसकी व्यथा-कथा सभी जानते हैं।

कागज की पाण्डुलिपियाँ

कुमारपालप्रबन्ध (जिनमण्डन गणि, वि.सं. १४६२) में एक उल्लेख मिलता है [११] कि एक बार **चालुक्यनरेश कुमारपाल** जब अपने जैन ज्ञान-भण्डार में गया, तो उसने देखा कि उसके लिपिकार कागज के पत्रों पर पाण्डुलिपियाँ तैयार कर रहे हैं। जब उसने पूछा कि कागज पर लेखन-कार्य क्यों किया जा रहा है, तब लिपिकारों ने उसका कारण ताड़पत्रों की कमी बतलाया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि १३वीं–१४वीं सदी में ताड़पत्रों की उपलब्धि में कठिनाई होने लगी थी। अतः पाण्डुलिपियाँ कागज पर लिखी जाने लगी थीं। कागज की ऐसी पाण्डुलिपियाँ उत्तर-भारत में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं।

कागज-निर्माण-घरेलू उद्योग-धन्धे के रूप में

कागज ने पाण्डुलिपि-लेखन के क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न की क्योंकि उस पर लेखन-क्रिया ताड़पत्र की अपेक्षा अधिक सुकर थी। पाण्डुलिपियों के केन्द्र-स्थलों अथवा उनके आसपास घरेलू-उद्योग के रूप में पाण्डुलिपियों के योग्य कागज का निर्माण भी होने लगा तथा सुविधाजनक लेखनी तथा विविध वानस्पतिक स्याहियाँ (काली, लाल, सुनहरी, रुपहली आदि) बनाई जाने लगी थीं। ग्रन्थी-रहित कई प्रकार की लेखनी का प्रयोग किया जाने लगा था। कुछ पाण्डुलिपियों में कीमती सुनहरी-स्याही का प्रयोग भी किया जाने लगा था।

कागज की सचित्र पाण्डुलिपियाँ

कागज की अनेक पाण्डुलिपियाँ सचित्र भी मिली हैं, जो मध्यकालीन रंगीन चित्रकला के अद्भुत नमूने हैं। उनकी सुन्दर लिपि, चित्रों में प्रयुक्त विविध वर्ण, नायक–नायिकाओं के नख–शिख चित्रण एवं उनकी भाव–भंगिमाएँ तथा प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बहुत ही सजीव एवं आकर्षक बन पड़े हैं। ऐसी बहुमूल्य सचित्र पाण्डुलिपियों में कल्पसूत्र (अर्धमागधी-जैनागम), महाकवि जिनसेन कृत महापुराण (संस्कृत), महाकवि पुष्पदन्त कृत अपभ्रंश-महापुराण एवं जसहरचरिउ (अपभ्रंश), सुगंधदशमी कथा (अपभ्रंश), महाकवि रइधू कृत जसहरचरिउ (अपभ्रंश) एवं शान्तिनाथ-पुराण (अपभ्रंश) और केशराजमुनिकृत

११. कुमारपाल प्रबन्ध पत्र सं.६६ तथा उपदेश तरंगिणी (१६वीं सदी) पत्र १४२

सचित्र राम-यशोरसायन-रास अपर नाम रामायण [११-१२] (जिसके २२४ पत्रों से केवल १३१ पत्र ही उपलब्ध हैं) आदि की रंग-बिरंगी चित्रकला विशेष महत्व की है। कहा जाता है कि जयपुर के एक शास्त्र-भण्डार में ऐसी भी एक जैन-पाण्डुलिपि सुरक्षित है, जो बहुमूल्य हीरे-जवाहरातों से जटित एवं चित्रित है।

मध्यकालीन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती आदि के साहित्य का बहुलभाग कागज पर लिखा गया और राजनैतिक अराजकता, साम्प्रदायिक आँधियों तथा विविध प्राकृतिक कारणों से अगणित पाण्डुलिपियों के नष्ट हो जाने के बावजूद भी अवशिष्ट पाण्डुलिपियों की संख्या भी इतनी अधिक है कि अभी उनकी भली-भाँति गणना तक नहीं हो पाई है, मूल्यांकन एवं प्रकाशन तो बहुत दूर की बात है। अकेले राजस्थान एवं गुजरात के प्राच्य शास्त्र-भण्डारों को देखकर साहित्य एवं पुरातत्व के महामनीषी **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने अपनी एक शोध-भाषण-माला में कहा था [१३]–

...."भारत को पाण्डुलिपियों का देश कहा जाए, तो अत्युक्ति न होगी। वाङ्मय के क्षेत्र में भारत की सांस्कृतिक निधि इतनी समृद्ध है कि ज्ञात होता है कि साहित्य के किसी महान अधिदेवता ने कुबेर जैसा अक्षय-कोष ही भर दिया है। संस्कृत, पालि, शौरसेनी, अर्धमागधी, प्राकृत और अपभ्रंश-भाषा, (जो कि आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है), अभी कुछ वर्षों से अपने विपुल-साहित्य का भण्डार लिये हुये हमारे दृष्टिपथ में आ गई है। इस विशाल-साहित्य को विधिवत् सुरक्षित, सम्पादित और प्रकाशित करने के लिये एक बड़े राष्ट्रिय अभियान की आवश्यकता है।"

भारतीय प्राच्य-लिपियाँ (Scripts): ब्राह्मी एवं खरोष्ठी

भारतीय प्राच्य-विद्या के इतिहास के अनुसार भारत में प्राच्यकालीन दो लिपियों के उल्लेख मिलते हैं। **ब्राह्मी-लिपि** एवं **खरोष्ठी-लिपि**। आचार्य **जिनसेन** तथा **आवश्यक-निर्युक्ति-भाष्य** और **समवायांग-सूत्र** (अभयदेवसूरि टीका पत्र–३६) आदि के अनुसार तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी **ब्राह्मी** नामक पुत्री के लिये बाँई ओर से दाहिनी ओर लिखे जाने की लिपि-विद्या सिखाई थी [१४]। जैन-मान्यतानुसार वही लिपि आगे चलकर ब्राह्मी-लिपि के नाम से प्रसिद्ध हुई। किन्तु साहित्यिक उल्लेखों को छोड़कर उसके अन्य पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते। **मोहनजोदारो** एवं **हरप्पा** के उत्खनन में प्राप्त सीलों पर जो लेख मिले हैं, उनकी लिपि अभी तक विवादास्पद ही है। किन्तु अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि वह भी तत्कालीन ब्राह्मी-लिपि का ही एक रूप है।

---

१२. जैन सिद्धांत भवन ग्रन्थावली आरा (बिहार) भाग–१ पृ. १८

१३. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना में प्रदत्त भाषण का एक अंश

१४. लिपि–पुस्तकादावक्षर विन्यासः। साचाष्टादशः प्रकार इति श्रीमन्नाभेय – जिनेन स्वसुताया ब्राह्मीनामिकाया दर्शिता ततो ब्राह्मीत्यभिधीयते। आह च–लेह लिपिविज्ज जिणेण बंभीइ दाहिणकरेणं। इति अतो ब्राह्मीति स्वरूप–विशेषण लिपेरिति। दे.पत्र सं.५

बडली ग्राम (ई.पू. पाँचवी सदी), में उपलब्ध शिलालेख तथा सम्राट अशोक के अभिलेखों और सम्राट खारवेल के उदयगिरि-खण्डगिरि के शिलालेखों की लिपि ब्राह्मी मानी गई है। पुरातत्वज्ञों के अनुसार खारवेल-शिलालेख के लगभग २-३ सौ वर्षों बाद तक उसका (ब्राह्मी-लिपि का) प्रचलन बना रहा। अतः यह कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व ५वीं सदी से ईसा.की लगभग पहिली-दूसरी सदी तक ब्राह्मी-लिपि अधिक लोकप्रिय रही। परवर्त्ती कालों में उसका क्रमिक विकास हुआ, जिसका प्रमुख रूप वर्तमानकालीन देवनागरी के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

खरोष्ठी-लिपि में पाण्डुलिपियाँ

पश्चिमोत्तर-सीमावर्त्ती भारत (वर्तमान में पाकिस्तान) में उपलब्ध सम्राट **अशोक** के कुछ अभिलेख खरोष्ठी-लिपि में भी उत्कीर्णित हैं। इतिहासकारों ने उनका अध्ययन कर बताया है कि प्राचीन काल में **पारसकुल** के देशों (Persian Gulf Countries) के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध थे। वहाँ के व्यापारियों के आगमन के साथ ही उनकी **आरमाईक-लिपि**, जो एक प्रकार से खरोष्ठी के समान थी, उसका प्रवेश भी भारत में हुआ। इस (आरमाईक-लिपि) में केवल २२ वर्णाक्षर थे। उसमें स्वरों की अपूर्णता और दीर्घ–ह्रस्व का अभेद तथा स्वरों एवं मात्राओं का सदा अन्तर रहने के कारण वह मूल-भारतीय-साहित्य-लेखन के लिए अयोग्य सिद्ध हुई।

चीनी-विश्वकोश में खरोष्ठी-लिपि को **खरोष्ठ** नाम के एक भारतीय ब्राह्मण द्वारा आविष्कृत बताया गया है। बहुत सम्भव है कि उसे भारतीय-साहित्य के लेखन के योग्य बनाने हेतु कुछ संशोधन-परिवर्तन-परिवर्धन किसी ब्राह्मण विद्वान् ने किये हों ? चूँकि **नन्द-मौर्ययुग** में **तक्षशिला** प्राच्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान के पठन-पाठन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण केन्द्र था, अतः यह असम्भव नहीं कि उक्त लिपि-संशोधक खरोष्ठ नामक ब्राह्मण **तक्षशिला-विद्यापीठ** का कोई प्राध्यापक रहा हो और परवर्त्ती कालों में उसी के नाम पर वह **खरोष्ठ-लिपि** के नाम से प्रसिद्ध हो गई हो ? वस्तुतः यह तो एक अन्वेषणीय विषय है। उस पर विशेष प्रकाश डाल पाना यहाँ सम्भव नहीं।

खरोष्ठी-लिपि (जो कि दाँई ओर से बाँई ओर लिखी जाती है) की लोकप्रियता अपनी कुछ खामियों के कारण भारत में बढ़ नहीं सकी। इस लिपि में भारत में सम्भवतः कोई पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं हुई है। बौद्धग्रन्थ–**धम्मपद** की एक पाण्डुलिपि अवश्य ही खरोष्ठी में लिखित मिली है। किन्तु वह **तुर्किस्तान** (Turkey) के रेगिस्तान में उपलब्ध हुई है। बहुत सम्भव है कि उसका वहॉ खरोष्ठी में प्रतिलिपिकरण किया गया हो?

किन्तु, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, ब्राह्मी-लिपि परवर्त्ती कालों में अनेक रूपों में विकसित होती रही।

प्रादेशिक, कूटलेखन एवं रहस्यपूर्ण लिपियाँ

अर्धमागधी आगम साहित्य की टीकाओं तथा ललित-विस्तरा में भी परवर्त्ती अनेक प्रकार की लिपियों के उल्लेख मिलते हैं। उन सभी का विश्लेषण अभी तक नहीं किया गया है, किन्तु उनके नामों के आधार पर यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि उनमें से कुछ लिपियाँ तो प्रादेशिक थीं, जैसे **बंग**-लिपि, **मगध**-लिपि, **दरद**-लिपि, **कलिंग**-लिपि, **दाविडी**-लिपि, **भूत**-लिपि, **ऊर्ध्वान्तरित-लिपि** आदि, और कुछ लिपियाँ **कूटलेखन** (Secret or Code-Words) आदि से सम्बन्धित थीं, जो राजनयिकों द्वारा गोपनीय सन्देशों के आदान-प्रदान के निमित्त सांकेतिक शब्दों से सम्बन्धित थीं, जैसे रहस्यलिपि [१५], कूटलिपि [१६], **दशान्तरपदसन्धिलिखित-लिपि, द्विस्तरपदसन्धिलिखित-लिपि,** आदि। एक लिपि ऐसी भी है, जिसका गणित से सम्बन्ध रहा होगा। जैसे-**गणियलिवि**।

आक्रान्ताओं के नाम पर प्रचलित लिपियाँ

कुछ लिपियाँ उन आक्रान्ताओं के नाम पर भी चल पड़ी, जो *यहाँ आकर बस गए थे। जैसे–**हूणलिपि, खास्यलिपि, चीनी-लिपि** आदि।* वस्तुतः अनेक विदेशी-जातियों तथा प्रजातियों के लोग आक्रान्ताओं अथवा अन्य अनेक रूपों में भारत में आए और अपनी भाषा एवं संस्कृति के साथ ही यहाँ घुल-मिल भी गए थे, (जैसे शकों की सेना से **सक्सेना** आदि)। अतः उक्त लिपियाँ एवं उनकी भाषाओं के माध्यम से उनके इतिहास एवं संस्कृति का अच्छा अध्ययन किया जा सकता है। अतः भारत के विविध पक्षीय इतिहास को सर्वांगीण बनाने की दृष्टि से उक्त लिपियों एवं भाषाओं के विस्तृत एवं तुलनात्मक विश्लेषण की महती आवश्यकता है। उक्त लिपियों से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों की जानकारी अभी तक प्रकाश में नहीं आई है।

ब्राह्मी तथा खरोष्ठी-लिपि में प्राचीन मूल पाण्डुलिपियाँ अनुपलब्ध

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि उपलब्ध जैन पाण्डुलिपियाँ पूर्वोक्त शिलालेखों को छोड़कर ब्राह्मी एवं खरोष्ठी में लिखी हुई नहीं मिलती। वे परवर्त्ती विकसित लिपियाँ यथा-**प्राचीन देवनागरी** तथा **कन्नड़, तमिल** आदि में मिलती हैं, अभी तक जो प्राचीनतम पाण्डुलिपियाँ ताड़पत्रों पर मिली हैं, वे पाण्डुलिपि-विज्ञान-विशेषज्ञों के अनुसार सम्भवतः ११वीं-१२वीं सदी के पूर्व की नहीं हैं, यह पहिले ही कहा जा चुका है।

१५–१६. अभी हाल में कुछ आतंकवादियों की रहस्य – लिपि या **कूट लिपि** पकड़ी गई हैं। समाचार पत्रों (दैनिक जागरण २८/६/२००१) ने उसका विवरण इस प्रकार दिया है–

(१) आटा और तेल कल पहुँच जायेगा अर्थात् आर.डी.एक्स. और नाइट्रेवेंजिन भी कल तक पहुँच जायेगा।

(२) झाडू और दाने शीघ्र ही भेजे जा रहे हैं अर्थात् ए.के.४७ राइफिलें एवं गोलियाँ शीघ्र ही भेज रहें हैं। इसी प्रकार अन्य कूटलेखों में–टार्च अर्थात् रॉकेट लांचर, किताब अर्थात् विस्फोटक का आइमर, डिक्शनरी अर्थात् रिमोट–कन्ट्रोल और चप्पल अर्थात् पिस्तौल (भी शीघ्र भेज रहे हैं)

अतः यहाँ अनुमान ही प्रमाण माना जा सकता है, कि आचार्य **गुणधर, पुष्पदन्त, भूतबलि** एवं **कुन्दकुन्द** ने लेखन के लिए तत्कालीन सहज उपलब्ध भोजपत्रों अथवा ताड़पत्रों का तथा उनमें ब्राह्मी-लिपि का प्रयोग किया होगा, किन्तु वे मूल-पाण्डुलिपियाँ अधिकांशतः तो कालकवलित होती गई और वर्तमान में अवशिष्ट पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियों की सम्भवतः ५वीं-६वीं या उसके बाद की पीढ़ी की प्रतिलिपियाँ मात्र ही हमें उपलब्ध हैं।

अर्धमागधी आगमों की टीकाओं में उल्लिखित विविध लिपियाँ (Scripts)

अर्धमागधी आगम साहित्य के टीकाकारों ने समकालीन प्रचलित भारतीय लिपियों के नामों के उल्लेख कर उनके विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिये अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है, किन्तु उनकी वे टीकाएँ प्रायः आठवीं सदी ईस्वीं के बाद की हैं। **विशेषावश्यकभाष्य** में १८ प्रकार की लिपियों के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें से **जवणी** (यवनी) **तुरुक्की** (तुरुष्कदेशीया) **पारसी** जैसी लिपियाँ खरोष्ठी से सम्बन्धित हैं और जिनका परवर्त्ती विकसित रूप **अरबी**, **फारसी** एवं **उर्दू** लिपि में दिखाई देता है। विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा भारत में पैर जमाते ही उन्होंने अपने प्रशासनिक प्रभाव को प्रभावी बनाने हेतु न केवल अपनी भाषा, अपितु लिपि का भी ऐसा प्रचार किया कि भारतीय इतिहासकारों को भारतीय-भाषा एवं लिपियों में उसकी भी गणना करनी पड़ी। उक्त १८ लिपियों के नाम इस प्रकार हैं–(१) हंसलिपि (२) भूतलिपि (३) यक्षी (४) राक्षसी (५) ऊर्ध्वी (६) जवणी (यवनी) (७) तुरुक्की (८) कीरी (९) सिन्धी (१०) द्राविड़ी (११) मालवी (१२) नटी (१३) नागरी (१४) लाडलिपि (१५) पारसी (१६) अनिमित्ती (१७) चाणक्की एवं (१८) मूलदेवी। इन लिपियों में भी सम्भवतः एकाध को छोड़कर वर्तमान में जैन पाण्डुलिपियाँ-अनुपलब्ध हैं [१७]।

सुप्रसिद्ध **ललित-विस्तरा** के अनुसार ६४ लिपियाँ निम्न प्रकार हैं [१८] – (१) ब्राह्मी, (२) खरोष्ठी, (३) पुष्करसारी, (४) अंगलिपि, (५) बंगलिपि, (६) मगधलिपि, (७) मागधलिपि, (८) मनुष्यलिपि, (९) अंगुलीयलिपि, (१०) शकारिलिपि, (११) ब्रह्मबल्लीलिपि, (१२) द्राविडीलिपि, (१३) कनारिलिपि, (१४) दक्षिणलिपि, (१५) उग्रलिपि, (१६) संख्यालिपि, (१७) अनुलोमलिपि, (१८) ऊर्ध्वधनुलिपि, (१९) दरदलिपि, (२०) खास्यलिपि,

---

१७. (क) दे. गाथा सं. ४६४ की टीका

(ख) समवायांगसूत्र (१८वाँ समवाय) में कुछ परिवर्तनों के साथ निम्नप्रकार की लिपियों के नाम प्रस्तुत किए गए हैं–

(१) बंभी (२) जवणालिया (३) दोसाउआ (४) खरोट्ठिआ (५) पुक्खरसारिआ (६) पहाराअइआ (पहराइआ) (७) उच्चतरिआ (८) अक्खरपुट्ठिआ (९) भोगवयता (१०) वेणतिआ (११) णिण्हइया (१२) अंकलिवी (१३) गणिअलिवी (१४) गंधव्वलिवी (भूयलिवी) (१५) आदंसलिवी (१६) माहेसरीलिवी (१७) दामिलीलिवी एवं (१८) पालिंदीलिवी।

१८. दे. दसवाँ अध्याय

(२१) चीनलिपि, (२२) हूणलिपि, (२३) मध्याक्षरविस्तारलिपि, (२४) पुष्पलिपि, (२५) देवलिपि, (२६) नागलिपि, (२७) यक्षलिपि, (२८) गन्धर्वलिपि, (२६) किन्नरलिपि, (३०) महोरगलिपि, (३१) असुरलिपि, (३२) गरुड़लिपि, (३३) मृगचक्रलिपि, (३४) चक्रलिपि, (३५) वायुमरुलिपि, (३६) भोमदेवलिपि, (३७) अन्तरिक्षदेवलिपि, (३८) उत्तरकुरुद्वीपलिपि, (३६) अपरगोडादिलिपि, (४०) पूर्वविदेहलिपि, (४१) उत्क्षेपलिपि, (४२) निक्षेपलिपि, (४३) विक्षेपलिपि, (४४) प्रक्षेपलिपि, (४५) सागरलिपि, (४६) वज्रलिपि, (४७) लेख-प्रतिलेखलिपि, (४८) अनुद्रुतलिपि, (४६) शास्त्रावर्तलिपि, (५०) गणावर्त्तलिपि, (५१) उत्क्षेपावर्त्तलिपि, (५२) विक्षेपावर्त्तलिपि, (५३) पादलिखितलिपि, (५४) द्विरुत्तरपदसन्धिलिखितलिपि, (५५) दशोत्तरपदसन्धिलिखितलिपि, (५६) अध्याहारिणीलिपि, (५७) सर्वरुत्संग्रहणीलिपि, (५८) विद्यानुलोमलिपि, (५६) विमिश्रितलिपि, (६०) ऋषितपस्तप्रलिपि, (६१) धरणीप्रेक्षणालिपि, (६२) सर्वौषधनिष्यन्दलिपि, (६३) सर्वसारसंग्रहणीलिपि एवं (६४) सर्वभूतरुदग्रहणी-लिपि ।

उक्त अधिकांश लिपियों के उद्भव एवं विकास पर संभवतः अभी तक कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है जबकि उनका विश्लेषणात्मक इतिहास तैयार करने से अनेक रोचक तथ्य मुखर हो सकते हैं।

जैन साहित्य-लेखन-परम्परा

जैन इतिहास के अनुसार प्राचीनकाल में भले ही कुछ लेखनीय उपकरणों का प्रचार हो गया था, किन्तु प्रारम्भ में तीर्थंकर-वाणी को लिखने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया गया। क्योंकि–

(१) एक तो, हमारे श्रुतधरों, ज्ञानियों की स्मरणशक्ति, इतनी तीव्र थी कि कई सदियों तक सारी द्वादशांगवाणी (ज्ञानराशि) लेखन के बिना ही गुरु-शिष्य की कण्ठ-परम्परा से निःसृत होती रही।

(२) दूसरे, लेखन-क्रिया में प्रमादवश ज्ञानराशि के त्रुटित या सदोष होने की सम्भावनाएँ थी,

(३) तीसरे, ज्ञान को लिपिबद्ध करने तथा ग्रन्थों अथवा पाण्डुलिपियों की संख्या अधिक बढ़ जाने के कारण उन्हें विविध आपदाओं के मध्य सुरक्षित रख पाना कठिन था, तथा सामूहिक स्वाध्याय, प्रवचन, चिन्तन, मनन और निदिध्यासन (नि + ध्यै + सन् + घञ् – ल्युट वा = बारम्बार ध्यान में लाना, निरन्तर चिन्तन) में विघ्न भी आ सकते थे अथवा भिन्न-भिन्न कोटि के विचार उत्पन्न हो सकते थे। एवं,

(४) चौथे, पठनार्थी केवल पाण्डुलिपियों के पृष्ठों में ही उलझे रह जाते और वे गुरूपदेश तथा उनके श्रीमुख से होने वाली आप्तवाणी की व्याख्या, भाष्य आदि की उपेक्षा कर सकते थे, जिससे ज्ञानहानि की सम्भावनाएँ हो सकती थीं।

यही कारण है कि द्वादशांग वाली कण्ठ-परम्परा से निःसृत होती रही। वैदिक

और बौद्ध-आगमों की भी प्रारम्भिक परम्परा यही रही थी। अतः वह ज्ञान भी (श्रीगुरु मुखस्य ज्ञानम् अर्थात्) कण्ठ-परम्परा से जीवित रहा। यही कारण है कि जैनागमों को **"श्रुत"**, वैदिकागमों को **"श्रुति"** तथा बौद्धागमों को **"सुत्त"** कहा गया।

किन्तु जैनेतिहास के अनुसार उक्त गुरु-शिष्य अथवा कण्ठ-परम्परा, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, अधिक काल तक नहीं चल सकी। श्रमण-संस्कृति के प्रधान केन्द्र-**मगध** में ई.पू. चतुर्थ-सदी के आसपास **द्वादशवर्षीय भीषण अकाल** पड़ा धीरे-धीरे प्रायः समस्त उत्तर-भारत उसकी चपेट में आ गया। अतः अन्तिम श्रुतकेवली **आचार्य भद्रबाहु** ने १२००० साधु-संघ, पूर्वागत-श्रुतज्ञान-परम्परा तथा श्रमण-संस्कृति की सुरक्षा हेतु अपने नवदीक्षित शिष्य-**मगध-सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम)** के साथ दक्षिण-भारत की ओर विहार किया, जबकि उनके संघ के **स्थूलिभद्रादि आचार्य पाटलिपुत्र** में ही रह गए[१९]।

आचार्य भद्रबाहु ने मगध से लेकर **कटवप्र** (वर्तमान **श्रवणबेलगोला**, कर्नाटक) तक के मार्ग में परम्परा-प्राप्त ज्ञान का सर्वत्र प्रवचन किया तथा कटवप्र में वृद्धावस्था के कारण विश्राम लेकर उन्होंने आचार्य **विशाख** के नेतृत्व में समस्त संघ को आगे भेज दिया, जो **पाण्ड्य, चेर, चोल, सत्यपुत्र, केरलपुत्र** देशों में होता हुआ **सिंघल** (वर्तमान श्रीलंका) देश तक पहुँचा और वहाँ जैनधर्म की प्रभावना की।

श्वेताम्बर-परम्परा

श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार दुष्काल की समाप्ति के बाद आचार्य स्थूलिभद्र ने परम्परा-प्राप्त ज्ञानराशि के बिखरने की आशंका से उसकी सुरक्षा हेतु **पाटलिपुत्र में** एक वाचना का आयोजन किया किन्तु दुर्भाग्य से उसमें संग्रहीत ज्ञानराशि सुरक्षित न रह सकी। उसके बाद **मथुरा** में भी क्रमशः दो बार वाचनाएँ कर पूर्वागत ज्ञानराशि का संग्रह किया गया, किन्तु दुर्भाग्य से वे भी सुरक्षित न रह सकीं। अन्ततः भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के लगभग ६०० वर्ष बाद (अर्थात् ईस्वीं सन् ४५३ के आसपास) **बलभी** (गुजरात) में पुनः एक वाचना का आयोजन कर उसमें आगमों का संग्रह एवं लेखन-कार्य किया गया। दीर्घान्तराल के बाद उनकी प्रतिलिपियों की भी प्रतिलिपियों में विस्मृति, वैचारिक-विभिन्नता अथवा अन्य कारणों से पाठ-परिवर्तन आदि के हो जाने के कारण दिगम्बरों ने उन्हें अप्रामाणिक कहकर उनकी मान्यता को सादर अस्वीकार कर दिया[२०]।

दिगम्बर-परम्परा

दिगम्बर-परम्परा के उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार **आचार्य गुणधर** तथा अष्टांग

---

१९. दे.आचार्य भद्रबाहु चाणक्य चन्द्रगुप्त कथानक (रइधू कृत) श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान नरिया, वाराणसी (सन् १९८२) द्वारा प्रकाशित पृ. २७–२८।

२०.–२१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा भाग १ पृ. २८ तथा षट्खण्डागम धवला टीका १/१/१ पृ. ६१

-महानिमित्त के ज्ञानी **आचार्य धरसेन** ने बदलते परिवेश में कण्ठ-परम्परा से प्राप्त द्वादशांगवाणी की अपने पास अवशिष्ट ज्ञान-राशि की सुरक्षा की दृष्टि से उसे लिपिबद्ध करना अथवा कराना अनिवार्य समझा।

आचार्य गुणधर ने लेखनोपकरण-सामग्री की उपलब्धि में कठिनाइयाँ तथा अधिक रूप में लिखित-सामग्री की सुरक्षा सम्बन्धी कठिनाई को ध्यान में रखते हुए सोलह-सहस्र-मध्यम-पदों वाले **कसायपाहुड** के विस्तृत वर्ण्य-विषय को संक्षिप्त कर **२३३ गाथासूत्रों** में पूर्वागत श्रुत-परम्परा को स्वयं निबद्ध किया और अपने दो आचार्य-शिष्यों-**नागहस्ति** तथा **आर्यमंक्षु** को उनका विशद् ज्ञान कराया।

किन्तु **आचार्य धरसेन** ने किन्हीं विशिष्ट कारणों से अपनी ज्ञान-राशि को स्वयं निबद्ध न कर आचार्य **पुष्पदन्त** एवं **भूतबलि** को उसका अध्ययन कराया। तत्पश्चात् उन दोनों शिष्यों में से पुष्पदन्त ने (१७७ सूत्र वाले) सत्प्ररूपणा-साहित्य तथा भूतबलि ने शेष **द्रव्य-प्रमाणादि** जैसे अवशिष्ट अंश का सूत्र-शैली में ग्रथन किया, जो षट्खण्डागम के नाम से प्रसिद्ध हुआ [२१]। यह प्रथम सदी ई.पू. के अन्तिम चरण के आसपास की घटना है।

यह कहना कठिन है कि **आचार्य गुणधर** एवं **पुष्पदन्त** तथा **भूतबलि** ने उक्त साहित्य-लेखन के लिए किस-किस प्रकार के लेखनोपकरणों का उपयोग किया होगा ? मूल रूप से वे भूर्जपत्रों पर लिखे गए थे या ताड़पत्रों पर ? उन्हीं के समय के आसपास **आचार्य कुन्दकुन्द** भी हुए। उनकी हस्तलेख सम्बन्धी मूल-पाण्डुलिपियों की कोई भी जानकारी नहीं मिलती।

तत्पश्चात् लगभग दो-तीन सौ वर्षों के बाद आचार्य **समन्तभद्र**, आचार्य **गृद्धपिच्छ**, **बट्टकेर**, **शिवार्य** एवं **स्वामिकार्तिकेय** आदि हुए। उन्होंने भी अपनी कृतियों को किस प्रकार की लेखन-सामग्री पर लिखा होगा, आज उसके साक्ष्य हमारे सम्मुख नहीं। किन्तु जैनजगत् उन महामहिम आचार्यों, भट्टारकों तथा श्रावकों एवं श्राविकाओं का निरन्तर ऋणी रहेगा, जिन्होंने किन्हीं साधनों से उनकी प्रतिलिपियाँ एवं उनकी भी प्रतिलिपियाँ स्वयं कर अथवा दूसरों से कराकर उन्हें समकालीन जैन-केन्द्रों में सुरक्षित रखा। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, ये परवर्त्ती पाण्डुलिपियाँ प्रायः **कन्नडलिपि में ताड़पत्रों** पर हैं, जो १२वीं–१३वीं सदी के आसपास की बतलाई जाती हैं।

पाण्डुलिपि का प्रारम्भिक रूप–शिलालेख एवं उनका महत्त्व

पाण्डुलिपि के उद्भव की प्रथम कड़ी के रूप में मान्य शिलालेखों की, किसी भी देश के इतिहास के निर्माण में प्रमुख भूमिका होती है। पूर्व में इसका संकेत दिया ही जा चुका है। उसमें अंकित सन्दर्भों तथा तथ्यों को सर्वाधिक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण माना गया है।

२०.–२१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा भाग १ पृ. २८ तथा षट्खण्डागम धवला टीका १/१/१ पृ. ६१

पुराविदों के अनुसार **भारतीय संविधान तीर्थंकर महावीर एवं सम्राट-खारवेल** के प्रति विशेष रूप से उपकृत है क्योंकि देशरत्न **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी** (प्रथम राष्ट्रपति भारतीय गणतंत्र) की प्रेरणा से उसकी मूल प्रति के मुख पृष्ठ पर सर्वोदय के महान प्रचारक तथा मानव-व्यक्तित्व के विकास के दृढ़ संकल्पी तीर्थंकर महावीर का रेखा-चित्र तथा उसके नीचे जैनधर्म की प्रशंसा का अंकन किया गया है और **कलिंगाधिपति जैन सम्राट खारवेल** (ई. पू . दूसरी सदी) के शिलालेख की १०वीं पंक्ति में उल्लिखित **''भरधवस''** के आधार पर स्वतंत्र भारत का संवैधानिक नामकरण भी **''भारतवर्ष''** किया गया।

पुराविदों ने उक्त **खारवेल-शिलालेख** को अभी तक के प्राप्त विश्व के प्राचीनतम शिलालेखों का मुकुट-मणि माना है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय-संविधान के लेखन के पूर्व धटित एक घटना बड़ी ही रोचक एवं चर्चित है, जो निम्न प्रकार है—

दिल्ली में **भारतीय संविधान-निर्मात्री परिषद्** की बैठक चल रही थी। देशरत्न **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी**, प्रधान मंत्री **पं. जवाहरलाल नेहरु, सरदार बल्लभभाई पटेल,** उड़ीसा के त्यागमूर्ति मुख्यमंत्री **विश्वनाथदास** जी, **मौलाना अबुलकलाम आजाद** जैसे अनेक महान् राष्ट्रभक्त एवं स्वतंत्रता-सेनानी तथा **डॉ. भीमराव अम्बेडकर** जैसे विधिवेत्ता आदि उसमें उपस्थित थे।

संविधान-लेखन के प्रारम्भ में ही प्रश्न उठा कि स्वतंत्र-भारत का संवैधानिक नाम क्या हो ? उपस्थित सदस्यों में से किसी ने **आर्यावर्त्त** और किसी ने **हिन्दुस्तान** जैसे नाम सुझाए और उन पर दीर्घकालीन चर्चाएँ-परिचर्चाएँ भी हुई। किसी ने **मार्कण्डेय-पुराण** में सन्दर्भित भारत का उद्धरण देते हुए इस देश का संवैधानिक नाम **''भारत''** घोषित करने का आग्रह किया। एतद्विषयक चर्चाएँ भी लम्बे समय तक चलीं, किन्तु पण्डित **जवाहरलाल नेहरु,** जो कि प्राचीन विश्व इतिहास एवं संस्कृति के गम्भीर अध्येता एवं चिन्तक मनीषी विद्वान् भी थे, उनका प्रस्ताव था कि हमारे स्वतंत्र-भारत के संवैधानिक नामकरण के लिए प्राचीन साहित्यिक-साक्ष्य की अपेक्षा यदि कोई प्राचीन **शिलालेखीय-साक्ष्य** मिल सके, तो वह अधिक प्रामाणिक एवं न्याय-संगत होगा। यह संयोग-सौभाग्य ही था कि उक्त परिषद् में एक इतिहासकार सदस्य भी उपस्थित थे। उन्होंने **भुवनेश्वर** (उड़िसा) जिले की उदयगिरि-खण्डगिरि की पहाड़ी पर ई.पू. दूसरी सदी में उत्कीर्णित खारवेल-शिलालेख [२२] का अध्ययन किया था, जिसकी भाषा **''ओड्र-मागधी प्राकृत''** एवं लिपि **''ब्राह्मी''** है।

वह ऐतिहासिक शिलालेख एक लम्बी ग्रेनाइट १५फुट x ५फुट की पाषाण-शिला पर १७ पंक्तियों में टंकित है। उन्होंने उक्त शिलालेख की १०वीं पंक्ति का उद्धरण देते हुए अनुरोध किया कि ई.पू. दूसरी सदी के उक्त शिलालेख में इस देश को **''भरधवस''**

२२. यह शिलालेख कई नामों से प्रसिद्ध है। यथा-उदयगिरि-खण्डगिरि शिलालेख हाथीगुम्फा-शिलालेख, खारवेल-शिलालेख आदि।

(अर्थात् **भारतवर्ष**) कहा गया है। अतः हमारे देश का संवैधानिक नाम यदि "भारतवर्ष" रखा जाय, तो वह अधिक प्रामाणिक एवं न्याय-संगत होगा।

उनका प्रस्ताव सुनकर तत्कालीन वाइसराय एवं गवर्नर-जनरल लार्ड माउण्टवैटन, पं. जवाहरलाल नेहरू, श्री राजगोपालाचार्य, श्री विश्वनाथ दास, डॉ. कैलाशनाथ काटजू, सरदार वल्लभभाई पटेल प्रभृति वरिष्ठ नेतागण उदयगिरि-खण्डगिरि (भुवनेश्वर) पहुँचे। पूर्वोक्त शिलालेख की दशवीं पंक्ति का विशेष अध्ययन किया और दिल्ली वापिस लौट आये और अगले दिन ही उन इतिहासकार-सदस्य महोदय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तथा तालियों की गड़गड़ाहट के मध्य सभी ने प्रमुदित मन से उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान की।

खारवेल-शिलालेख एवं उसका ऐतिहासिक महत्व

दुर्भाग्य से हम लोग खारवेल जैसे स्वदेशाभिमानी, मातृभूमि-भक्त तथा जैन समाज के महान् यशस्वी सपूत, मुनि-सेवक एवं जिनवाणी-भक्त **कलिंगाधिपति जैन चक्रवर्ती सम्राट खारवेल** को भूलते जा रहे थे। किन्तु धन्य हैं वे **आचार्य-प्रवर विद्यानन्द जी मुनिराज**, जिन्होंने देशहित एवं समाजहित में उस खारवेल के नाम एवं कार्यों से सभी को परिचित कराना अनिवार्य समझा। अतः पिछले लगभग चालीस वर्षों से विविध दृष्टिकोणों से उसके मूल शिलालेख और तत्सम्बन्धी साक्ष्यों का उन्होंने लगातार गहन अध्ययन तथा चिन्तन कर उसके महान् व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उजागर करने का दृढ़ संकल्प किया, जो साकार हुआ दिनाँक **२६.११.६८** के प्रातःकाल, जब उड़ीसा के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री **जानकीबल्लभ जी पटनायक** के करकमलों द्वारा **कुन्दकुन्द भारती (दिल्ली)** के प्रांगण में **खारवेल-भवन** का शिलान्यास किया गया। इस दो मंजिले विशाल भवन का शीघ्र ही निर्माण होने जा रहा है, जो खारवेल-शिलालेख के बहुआयामी मूल्यांकन के साथ-साथ भारत के उच्चस्तरीय प्राकृत एवं जैन-विद्या के शोध-केन्द्र के रूप में कार्य करेगा।

जब मैं प्राच्यकालीन जैन इतिहास एवं संस्कृति पर विचार करता हूँ, तो सोचता हूँ कि यदि ई.पू. चौथी सदी के मध्यकाल में **मगध** के द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल के समय **आचार्य भद्रबाहु** ने दक्षिण-भारत में ससंघ विहार न किया होता, तो श्रमण संस्कृति का इतिहास संभवतः वैसा न बन पाता, जैसा कि आज उपलब्ध है। यह तो सर्वविदित ही है कि आचार्य भद्रबाहु ने दुष्काल की भीषणता तथा दिगम्बरत्व की हानि का विचार कर मगध से दक्षिण भारत की ओर विहार किया। यद्यपि हमारा इतिहास इस विषय पर मौन है कि उनके विहार का मार्ग कहाँ-कहाँ से होकर रहा होगा ? वस्तुतः यह स्वतंत्र रूप से एक गहन विचारणीय विषय है।

किन्तु मेरी दृष्टि से वे, **पाटलिपुत्र** से विहार कर वर्तमानकालीन उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात एवं महाराष्ट्र होते हुए कर्नाटक के **कटवप्र** नाम के एक निर्जन वन में पधारे थे। चूँकि भद्रबाहु के जीवन का वह अन्तिम चरण था, अतः उन्होंने, जैसा कि

पूर्व में कहा जा चुका है, अपने वरिष्ठ शिष्य **आचार्य विशाख** को गणाधिपति घोषित कर उन्हें दिगम्बरत्व की सुरक्षा तथा जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के लिये ससंघ दक्षिण के सीमान्त तक अर्थात् तत्कालीन **पाण्डय, चेर, चोल, सत्यपुत्र, केरलपुत्र** एवं **ताम्रपर्णी (सिंहल)** के राज्यों में विहार करने का आदेश दिया था। यह तथ्य है कि आचार्य विशाख के ससंघ विहार करने के बाद आचार्य भद्रबाहु ने अपने अन्तिम समय में स्वयं एकान्तवास कर सल्लेखना धारण करने का निर्णय किया, किन्तु, नवदीक्षित **मुनिराज चन्द्रगुप्त** (पूर्व मगध-सम्राट) अपनी भक्ति के अतिरेक के कारण आचार्य भद्रबाहु की वैयावृत्ति हेतु उन्हीं की सेवा में उनके पास रह गये।

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आचार्य भद्रबाहु ने प्राकृतिक विपत्तिकाल में दिगम्बरत्व की सुरक्षा के लिए दक्षिण भारत ही क्यों चुना ? वे अन्यत्र क्यों नहीं गए ? मेरा जहाँ तक अध्ययन है, जैन-साहित्य में एतद्विषयक उसके साक्ष्य-संदर्भ अनुपलब्ध हैं।

किन्तु मेरी दृष्टि से इसके दो कारण हो सकते हैं– (१) मगध के साथ-साथ सम्भवतः समग्र उत्तर भारत दुष्काल की चपेट में था। और, (२) दक्षिण-भारत में आचार्य भद्रबाहु के दीर्घ-पूर्व भी जैनधर्म का प्रचुर मात्रा में प्रचार था।

बौद्धों के इतिहास-ग्रन्थ **"महावंश"** (जिसका रचनाकाल सन् ४६१–४७६ है) में ई.पू. ५४३ से ई.पू. ३०१ तक के **सिंहल-देश** के इतिहास का वर्णन किया गया है। उसमें ई.पू. ४६७ की सिंहल (वर्तमान श्रीलंका) की राजधानी **अनुराधापुरा** के वर्णन-क्रम में बतलाया गया है कि वहाँ के अनेक गगनचुंबी भवनों में से एक भवन, तत्कालीन **राजा पाण्डुकाभय** ने वहाँ विचरण करने वाले अनेक **निर्ग्रन्थों** के लिए बनवाकर उन्हें भी समर्पित किया था।

महावंश के उक्त संदर्भ से यह स्पष्ट है कि ई.पू. ५ वीं सदी के आसपास **सिंहल देश** में **निर्ग्रन्थ धर्म** अर्थात् जैनधर्म का अच्छा प्रचार था और कुछ चिन्तक-विद्वानों का यह कथन तर्कसंगत भी लगता है कि कर्नाटक, आन्ध्र, तमिल एवं केरल होता हुआ ही जैनधर्म **सिंहल** देश में प्रविष्ट हुआ होगा। **तमिल-जनपद** के **मदुराई** और रामनाड् में **ब्राह्मी-लिपि** में महत्वपूर्ण कुछ प्राचीन **प्राकृत-शिलालेख** उपलब्ध हुए हैं। उन्हीं के समीप जैन-मन्दिरों के अवशेष तथा तीन-तीन छत्रों से विभूषित अनेक पार्श्वमूर्तियाँ भी मिली हैं। इन प्रमाणों के आधार पर सुप्रसिद्ध पुराविद् **डॉ. सी.एन.राव** का कथन है [२३] कि–"ई.-पू. चतुर्थ–सदी में जैनधर्म ने तमिल के साथ-साथ सिंहल को भी विशेष रूप से प्रभावित किया था।" उनके कथन का एक आधार यह भी है कि–"सिंहल देश में उपलब्ध गुहालेखों की अक्षर-शैली और तमिलनाडु के पूर्वोक्त ब्राह्मी-लेखों के अक्षरों में पर्याप्त समानता है।"

---

२३. दक्षिण भारत में जैनधर्म (पं.कैलाशचन्द्र जी शास्त्री), पृ. ३–४

तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि तिरुवल्लुवर कृत **''कुरल-काव्य''** और व्याकरण ग्रन्थ **''तोलकप्पियम्''** जैसे तमिल के गौरवग्रन्थों पर जैनधर्म का पूर्ण प्रभाव है। इस कारण इतिहासज्ञ विद्वानों की यह मान्यता है कि **वैदिक** अथवा **ब्राह्मण-धर्म** के प्रभाव के पदार्पण के पूर्व ही तमिल-प्रान्त में जैनधर्म का प्रवेश हो चुका था। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि तमिल के शास्त्रीय कोटि के महाकाव्यों में से एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **''नालडियार''** में उन आठ सहस्र जैनमुनियों की रचनाएँ ग्रथित हैं, जो **पाण्ड्य-नरेश** की इच्छा के विरुद्ध पाण्ड्य-देश छोड़कर अन्यत्र विहार करने जा रहे थे। यह संग्रह-ग्रन्थ तत्कालीन **पाण्ड्य-देश** में लिखा गया था।

कलिंग के जैन चक्रवर्ती-सम्राट खारवेल ने अपने हाथीगुम्फा-शिलालेख में लिखा है कि–''**मगध-नरेश नन्द** ३०० वर्ष पूर्व कलिंग से जिस ''कलिंग-जिन'' को छीनकर मगध में ले गया था, उसे मैंने उससे वापिस लाकर कलिंग में पुनः स्थापित कर दिया है [२४]।'' खारवेल का समय ई.पू. दूसरी सदी का मध्यकाल है। इस तथ्य का गहन अध्ययन कर **डॉ.के.पी. जायसवाल** ने लिखा है कि ''कलिंग (वर्तमान उड़ीसा) में जैनधर्म का प्रवेश शिशुनाग वंशी **राजा नन्दिवर्धन** के समय में हो चुका था। खारवेल के समय के पूर्व भी उदयगिरि (कलिंग) पर्वत पर अरिहन्तों के मन्दिर निर्मित थे, क्योंकि उनका उल्लेख खारवेल के शिलालेख में हुआ है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट विदित होता है कि खारवेल के पूर्व भी कई शताब्दियों तक जैनधर्म कलिंग का राष्ट्र-धर्म रहा था।'' उनके इस कथन से प्रतीत होता है कि तीर्थंकरों की सिद्ध एवं अनेक तीर्थंकरों की जन्मभूमि-बिहार से यह जैनधर्म बंगाल, कलिंग, आन्ध्र, तमिल एवं केरल होता हुआ सिंहल देश तक पहुँचा होगा।

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है–पूर्व में इतिहास-लेखन की **परम्परा न थी**, इस कारण साक्ष्यों के अभाव में यह ज्ञात न हो सका कि सुदूर-दक्षिण में उसका प्रचार-प्रसार करने में आचार्य भद्रबाहु से भी पूर्व किन-किन मुनि-आचार्यों का योगदान रहा होगा ?

आचार्य भद्रबाहु को इसकी जानकारी अवश्य रही होगी। यही कारण है कि मगध के द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल के समय उन्होंने ससंघ दक्षिण भारत की यात्रा ही उपयुक्त समझी। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, कि उनकी इस यात्रा में उनके जाने का मार्ग कहाँ-कहाँ से रहा होगा तथा कितने महीनों में उन्होंने इस यात्रा को तय किया होगा, दुर्भाग्य से इसकी जानकारी अभी तक नहीं मिल सकी है।

महाकवि **कालिदास** के विरही-यक्ष ने जिस मेघ को अपना दूत बनाकर अपनी विरहिणी **यक्षिणी** की खोज के लिए भेजा था, उसके जाने के **आकाश-मार्ग** तक का पता विद्वानों ने लगा लिया, किन्तु यह एक दुःखद-प्रसंग है कि आचार्य भद्रबाहु की दक्षिण-यात्रा के स्थल-मार्ग तक का प्रामाणिक पता विद्वान लोग अभी तक नहीं लगा सकें

२४. खारवेल–शिलालेख पं. १२

हैं और न ही किसी का ध्यान भी उस ओर जा रहा है।

बहुत सम्भव है कि कुछ विशिष्ट कारणों से आचार्य भद्रबाहु गिरनारपर्वत की यात्रा करते हुए ससंघ दक्षिण की ओर मुड़े हों। और वहाँ की एक गुफा का उन्होंने अपने नवदीक्षित भक्त शिष्य (सम्राट) चन्द्रगुप्त की यात्रा-स्मृति में "चन्द्रगुफा" नाम घोषित कर दिया हो ? यह तथ्य चिन्तनीय है।

हाथीगुम्फा-शिलालेख के अनुसार सम्राट खारवेल (ई.पू. द्वितीय सदी) ने अपनी दिग्विजय के प्रसंग में **दक्षिणापथ** के कई राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। यद्यपि उस समय के भूगोल की राजनैतिक सीमा-रेखाएँ स्पष्ट नहीं है किन्तु खारवेल-शिलालेख में जिस दक्षिणापथ पर विजय प्राप्त करने की बात कही गई है, उसमें वे ही देश आते हैं, जिन्हें वर्तमान के भूगोल-शास्त्रियों ने आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिल, केरल एवं सिंहल (श्रीलंका) देश कहा है। खारवेल के शिलालेख में जो एक विशेष बात कही गई है वह यह, कि उसने (खारवेल ने) अपनी दिग्विजय के क्रम में दक्षिणापथ के पिछले १३०० वर्षों से चले आये एक शक्तिशाली **तमिल-संघात** का भी भेदन कर दिया था। इस संघात अथवा महासंघ में तत्कालीन सुप्रसिद्ध राज्य-चोल, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र तथा ताम्रपर्णी (सिंहल) के राज्य सम्मिलित थे तथा यह महासंघ **"तमिल-संघात"** (United States of Tamil) के नाम से प्रसिद्ध था।

मेरी दृष्टि से खारवेल का यह आक्रमण केवल राजनैतिक ही नहीं था, बल्कि जैनधर्म के विरोधियों ने जैनधर्म के प्रचार-प्रसार में उक्त **तमिल-महासंघ तथा असिक, रठिक, भोजक एवं दण्डक रूप महाराष्ट्र-संघ** के माध्यम से जो कुछ गतिरोध उत्पन्न कर दिये थे, खारवेल ने उनसे क्रोधित होकर उन दोनों महासंघों को कठोर सबक सिखाया और उन संघीय राज्यों में जैनधर्म को यथावत् विकसित एवं प्रचारित होने का पुनः अवसर प्रदान किया। उसी का सुफल है कि **तमिल**, **कर्नाटक** एवं **महाराष्ट्र** ने आगे चलकर जैनधर्म की जो बहुमुखी सेवा की, वह जैन-इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय बन गया। इन प्रान्तों का प्रारम्भिक जैन-साहित्य एक ओर जहाँ स्थानीय बोलियों में लिखित साहित्य का **मुकुटमणि** माना गया, वहीं वह (साहित्य) कन्नड़ जैन कवियों द्वारा लिखित चतुर्विध अनुयोग-साहित्य का भी सिरमौर माना गया। साहित्य के इतिहासकारों की मान्यता है कि प्रारम्भिक तमिल, कन्नड़ एवं मराठी बोलियों को आद्यकालीन जैन-लेखकों ने ही काव्यभाषा के योग्य बनने का सामर्थ्य प्रदान किया है। इस प्रकार **सम्राट खारवेल** द्वारा स्थापित उक्त परम्परा कर्नाटक में १०वीं-११वीं सदी तक अन्तर्वर्ती जल-स्रोतों के प्रवाह के समान अवाध गति से चलती रही।

यह भी विचारणीय है कि खारवेल ने कलिंग में जो विराट **जैन-मुनि-सम्मेलन** बुलाया था,क्या वह **"तमिरदेह संघात"** के द्वारा की गई जैनधर्म के ह्रास एवं जैनागमों की क्षतिपूर्ति के विषय में विचारार्थ तथा आगे के लिये योजना-बद्ध सुरक्षात्मक कार्यक्रमों के संचालन की दृष्टि से तो आयोजित नहीं था ? अन्यथा, वह देश के कोने-कोने से, सभी दिशाओं-विदिशाओं से लाखों की संख्या (सत-सहसानि) में महातपस्वी मुनि-आचार्यों

से पधारने का अनुरोध कर उनका सम्मेलन क्यों करता तथा उनसे उसमें मौर्यकाल में उच्छिन्न [२५] **"चोयट्ठि"** (चउ+अट्ठी अर्थात् ४+८=१२ अर्थात् **द्वादशांगवाणी**) का वाचन-प्रवचन करने का सादर निवेदन क्यों करता ? यह यक्ष-प्रश्न गम्भीरता पूर्वक विचार करने का है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि कर्नाटक सहित दक्षिण भारत में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार का काल और अधिक नहीं, तो कम से कम (१५०+१३००=) १४५० ई.पू. अथवा तीर्थंकर-पार्श्व से भी पूर्वकालीन रहा होगा।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, हाथीगुम्फा-शिलालेख की १२वीं पंक्ति के अनुसार **नन्दराज कलिंग** पर आक्रमण कर **"कलिंग-जिन"** का अपहरण कर उसे **मगध** ले आया था। इतिहासकारों ने इसका विश्लेषण कर बताया है कि कलिंग-जिन कलिंग के राष्ट्रिय-गौरव का प्रतीक था तथा नन्दराज के आक्रमण के समय जैनधर्म वहाँ का **राष्ट्रधर्म** था। कलिंग की स्वाभिमानी प्रजा उस 'कलिंग-जिन" की मूर्ति के अभाव में शोकाकुल अवश्य बनी रही। वह उसे शताब्दियों के बाद भी विस्मृत नहीं कर सकी थी तथा विभिन्न राजवंशों की पृष्ठ-पोषकता के कारण उस समय भी जैनधर्म कोने-कोने तक प्रचारित बना रहा। जब खारवेल कलिंग की राजगद्दी पर बैठा, तभी उसने अपनी पूर्ण शक्ति के साथ मगध पर आक्रमण किया और जैन-संस्कृति की प्रतीक एवं राष्ट्रिय गौरव के उस पावन-प्रतीक कलिंग-जिन को मगध-सम्राट **वहसतिमित्त** (वृहस्पतिमित्र) से वापिस लेकर कलिंग में उसकी विशाल-समारोह के साथ पुनर्प्रतिष्ठा की [२६]।

खारवेल-शिलालेख में यद्यपि यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि **कलिंग-जिन** किस तीर्थंकर की मूर्ति थी ? कुछ इतिहासकारों ने उसे आदि-तीर्थंकर **ऋषभदेव** की मूर्ति बतलाया है। यह असम्भव भी नहीं क्योंकि प्राचीन जैनागमों में तीर्थंकर ऋषभ का कलिंग के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाया गया है। **ऋषभ** के एक पुत्र का नाम **कलिंग** था। अतः उसी के नाम पर उस भूभाग का नाम भी कलिंग रखा गया था। कलिंग-जिन की मूर्ति मगध में लगभग दो-ढाई सौ वर्षों तक सुरक्षित रह जाने से यह भी अनुमान लगाना सहज है कि मगध के राजवंश भी वैसे ही जैनधर्म के उपासक तथा जैन-संस्कृति के संरक्षक थे, जैसे कि कलिंग के राजवंश। कलिंग पर **नन्दराज** के आक्रमण के पूर्वकाल में भी वहाँ ऋषभदेव की पूजा-अर्चना सार्वजनिक रूप में की जाती रही होगी।

कलिंग-जिन की मूर्ति के उक्त उल्लेख से इस तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है कि ई.पू. की चौथी सदी में कलिंग एवं मगध में **जैन-मूर्ति-पूजा** प्रचलन में थी, तथा कलिंग में **जैन-मूर्ति-निर्माणकला** का भी पर्याप्त विकास हो चुका था।

प्राच्यविद्याविद् **पं. भगवानलाल इन्द्र जी** ने भी संभवतः सर्वप्रथम खारवेल-शिलालेख का अध्ययन कर तथा उसमें प्रारंभ में उत्कीर्णित जैन-संस्कृति के मूलमंत्र **णमोकार-मंत्र** के प्रारम्भिक चरण के साथ-साथ ही उसके ४ प्रतीकों का नामोल्लेख कर सिद्ध किया कि

२५. खारवेल–शिलालेख पं. १५–१६
२६. वही पं. ११–१२

जैनधर्म कलिंग का राष्ट्रधर्म था। अतः कलिंग की परम्परा-प्राप्त जैन संस्कृति की लोकप्रियता की अभिवृद्धि में खारवेल के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उक्त शिलालेख में उत्कीर्णित जैन-संस्कृति के उक्त **४ प्रतीक-चिन्ह** निम्न प्रकार हैं–

(१) वर्धमंगलः -

यह चिन्ह शिलालेख की दूसरी पंक्ति की बाँई ओर उत्कीर्णित है, जो निर्ग्रन्थ-संस्कृति एवं जैन-तीर्थंकरों का परिचायक उसका एक अत्यावश्यक अंग है। इस चिन्ह से जन-भावना की भी जानकारी मिलती है, कि सम्राट खारवेल एवं उसकी प्रजा जैन-संस्कृति एवं धर्म की परमभक्त थी।

(२) स्वस्तिक : -

स्वस्तिक का यह चिन्ह उक्त शिलालेख की चौथी एवं पाँचवीं पंक्ति के मध्य बाएँ पार्श्व में उत्कीर्णित है। यह चिन्ह जैन-परम्परा में मान्य जीवों की विभिन्न श्रेणियों का दिग्दर्शक, एक ऐसा प्रतीक चिन्ह है, जिसके अनुसार तीनों लोकों में प्रधान रूप से चार प्रकार के जीव रहते हैं–मनुष्य, देव, तिर्यंच एवं नारकी जीव।

जैनाचार्यों ने इन जीवों के विविध प्रकार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म सहस्राधिक भेद-प्रभेद कर उनकी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं, जो आधुनिक Biological Sciences की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण एवं रोचक सिद्ध हुई हैं और जिन्होंने सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक **सर जगदीशचन्द्र बसु** को भी प्रभावित किया था जिन्होंने जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित एकेन्द्रियकायिक वनस्पति को अपने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा संवेदनशील प्राणी घोषित कर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया था।

इसी स्वस्तिक के ऊपरी शिखर पर उत्कीर्णित एक अर्धचन्द्र पर तीन बिन्दु रखे गये हैं, जो कि जैन संस्कृति के सारभूत-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय एवं मुक्ति-मार्ग के प्रतीक चिन्ह हैं।

(३) नान्दिपद : -

कलिंग-जिन अर्थात् **ऋषभदेव** की पहिचान का चिन्ह जैन-परम्परा के अनुसार नान्दि अर्थात् वृषभ (बैल) है। अतः ऋषभदेव के प्रति आदर देने हेतु शिलालेख की मध्यान्त की एक पंक्ति के दाँई ओर नान्दि-पद अर्थात् वृषभ के चरण-चिन्ह उत्कीर्णित हैं। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, जैन इतिहास के अनुसार ऋषभदेव का कलिंग से **ऋग्वेद-पूर्वकाल** से ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। सारा कलिंग-देश उनके चरणों का परम भक्त था। अतः उसी की अभिव्यक्ति के लिए खारवेल ने अपने शिलालेख में **नान्दि-पद** को उत्कीर्णित कराया था।

खारवेल शिलालेख से विदित होता है कि नान्दिपदों को सम्मान देने की दृष्टि से ही सम्राट खारवेल ने पिथुंड में वृषभों (बैलों) के स्थान पर

गर्दभों से कृषिकार्य करवाया था [२७]।

(४) रुखचेतिय : -

खारवेल-शिलालेख के अन्त में दाँई ओर रुखचेत्तिय अर्थात् चैत्यवृक्ष उत्कीर्णित है। जैन-परम्परा में इसका बड़ा महत्व है, क्योंकि इसे देवों द्वारा पूजनीय तथा जिन-प्रतिमाओं को आश्रयस्थल देने वाला वृक्ष माना गया है। यथा–

–चेत्तरूणं मूलं पत्तेक्कं चउदिसासु पंचित्त चेट्ठति जिणप्पडिमा पलियंकट्ठिया सुरहेहिं महणिज्जा [२८]।

अर्थात् चैत्यवृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में पद्मासन से स्थित और देवों द्वारा पूजनीय ५–५ जिन-प्रतिमाएँ विराजमान की जाती हैं। इस महान् वृक्ष को सर्वौषधि के रूप में माना गया है। द्रव्यानुयोग एवं करणानुयोग संबंधी जैन-साहित्य में उक्त चैत्यवृक्ष का विशद् वर्णन किया गया है।

जैन-मान्यता के अनुसार जैन संस्कृति में पूर्वोक्त **णमोकार-मन्त्र** एवं चतुर्विध मांगलिक प्रतीकों का महत्व तो है ही, स्वस्थ समाज के निर्माण, राष्ट्र की उत्तरोत्तर समृद्धि एवं छहों ऋतुओं को सम बनाए रखने के लिए भी वे आवश्यक माने गए हैं। इसीलिए हाथीगुम्फा-शिलालेख में उनका निदर्शन केवल व्यक्तिगत रूप से नहीं, बल्कि सर्वसम्मत तथा लोकपरम्परा के अनुकूल किया गया है। जैनधर्मानुयायियों के मांगलिक कार्यों में तो आज भी सारे भारत में उक्त परम्परा प्रचलित है।

सम्राट खारवेल के बाद उक्त कलिंग-जिन का क्या हुआ, इसकी जानकारी नहीं मिलती। बहुत सम्भव है कि सदियों बाद किन्हीं कारणों से उसे पुनः **मगध** ले आया गया हो और किसी कारण से वह खण्डित हो गई हो और पटना के एक उत्खनन में प्राप्त छिन्नमस्तक तीर्थंकर आदिनाथ की मूर्ति वही प्राचीन कलिंग-जिन हो, जो इस समय **पटना-म्यूजियम** में सुरक्षित है। अथवा, ऋषभदेव का अपरनाम **जगतनाथ** (जगन्नाथ) भी है। अतः कभी-कभी ऐसी भी चर्चाएँ सुनने को मिलती हैं कि वर्तमान **जगन्नाथपुरी** के मन्दिर में अभी भी वह कलिंग-जिन सुरक्षित है। वस्तुतः उस दिशा में निर्भीक एवं निष्पक्ष खोज करने की तत्काल आवश्यकता है।

शिलालेख की ११वीं पंक्ति के अनुसार रणधुरन्धर खारवेल ने तीसरी बार दक्षिण भारत की ओर पुनः प्रयाण किया। इस प्रसंग में दक्षिण भारत को दो भौगोलिक इकाइयों में विभक्त किया जा सकता है–पहिला **तमिल-(अथवा द्रमिल्ल या द्रविड़) संघ** तथा **दूसरा महारट्ठ-संघ**। शत्रु-राजाओं के आक्रमण से बचने के लिए तमिलों ने, जैसा कि पूर्व में भी लिखा जा चुका है, वीर निर्वाण संवत् के १३०० वर्ष पूर्व में पार्श्ववर्त्ती कुछ राज्यों

२७. खारवेल-शिलालेख पं.११,

२८. तिलोयपण्णत्ती ३/१३७ तथा त्रिलोकसार, गा. २१५

को मिलाकर एक **संघात-राष्ट्रकुल** बना लिया था। खारवेल के सशक्त आक्रमण से वह छिन्न-भिन्न हो गया। इस तमिल-कुल की उस समय दो राजधानियाँ थीं–**उरगपुर** (त्रिचिरापल्ली) एवं **कोंची**। जैन इतिहास में इन दोनों नगरों का सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व है। खारवेल की विजय के बाद तथा उसके दीर्घगामी-प्रभाव से सारा तमिल-प्रदेश जैन संस्कृति का पुनः एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रारम्भ में **तमिलदेश की भाषाएँ** अपरिष्कृत अथवा साहित्य-लेखन के अयोग्य मानी जाती थीं किन्तु स्थानीय जनभाषाओं के प्रेमी जैनाचार्यों ने उन्हें आवश्यकतानुसार परिष्कृत कर तथा उसे साहित्य-लेखन के योग्य बनाकर उनमें व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य, कोष, धर्म, सिद्धान्त, व्यवहार, राजनीति, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य आदि सभी विषयों पर प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा। उक्त साहित्य-लेखन की प्रक्रिया भी बड़ी दुरूह किन्तु बड़ी वैज्ञानिक थी। कहा जाता है कि जिस समय वहाँ साहित्य-लेखन की योजना बनाई गई, उस समय सर्वप्रथम एक संघ तथा उसकी एक विशेषज्ञ-समिति बनाई गई, जिसका प्रथम नियम था कि मानव-मूल्यों को उन्नत बनाने हेतु ही साहित्य लिखा जाए, जो उच्चस्तरीय एवं सार्वजनीन हो। उस संस्था का नाम था **संगम** (अर्थात् **साहित्यकार-संसद** = Academic Council)। संगम के इस कड़े रुख का सुफल यह हुआ कि आद्यकालीन समस्त तमिल जैन-साहित्य उच्चस्तरीय बना तथा विश्व-साहित्य के उच्चतम-कोटि के ग्रन्थरत्नों में उसकी गणना की गई। ऐसे ग्रन्थों में से **तिरुवल्लुवर कृत थिरुक्कुरल-काव्य** तथा **मणिमेखलै**, **नालडियार**, **जीवक-चिन्तामणि**, **शिलप्पदिकारं** जैसे अनेक ग्रन्थरत्न अग्रगण्य माने गए।

तात्पर्य यह कि अपरिष्कृत एवं साहित्य-लेखन के लिए अयोग्य समझी जाने वाली ग्राम्य तमिल-भाषा को भी जैनाचार्यों ने साहित्य-लेखन के योग्य बनाया। यह *जैन-साहित्य-तमिल-प्रदेश के आदिकालीन साहित्य के रूप में सर्वमान्य किया गया है।* उस ऐतिहासिक विरासत में **सम्राट खारवेल** के दीर्घगामी प्रेरक-परोक्ष-प्रभाव रूप ऐतिहासिक योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

तमिल देश में इस प्रकार की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियाँ पाँचवीं सदी ईस्वी तक चलती रहीं। उसके बाद उसमें क्रमशः ह्रास होने लगा।

समाज एवं राष्ट्र को जीवन्त बनाए रखने के लिए देश के विभिन्न हिस्सों में समय-समय पर उत्सव, गीत, नृत्य, वादित्र, धार्मिक आयोजन, मुनि-सम्मेलन आदि समारोहों का होते रहना अत्यावश्यक है। इससे जीवन में सरसता, उत्साह, सामाजिक सौहार्द, सौमनस्य एवं राष्ट्रिय भावनाएँ जागृत रहती हैं। इसके लिए शासक को स्वयं ही दूरदृष्टि-सम्पन्न, कार्य-कुशल एवं कलाओं के प्रति उसमें उत्साह एवं सुरुचि-सम्पन्न होना आवश्यक है। **खारवेल** में संयोग से ये सभी गुण विद्यमान थे [२६]।

शिलालेख की पाँचवीं पंक्ति के अनुसार खारवेल स्वयं **गन्धर्व-विद्या** में प्रवीण था तथा वह कलिंग एवं विजित राज्यों में विविध सांस्कृतिक आयोजन कराता रहता था।

२६. खारवेल शिलालेख पं. ४–५

समय-समय पर सर्व-**पाषंडों** (अर्थात् सभी सम्प्रदायवालों) के साथ मिलकर तथा अपनी उपस्थिति में वह **"समाज"** (सार्वजनिक समारोह) कराकर सभी का मनोरंजन करता रहता था और इस माध्यम से प्रजा-जनों के हृदय को जीतता रहता था [३०]।

शिलालेख की दूसरी पंक्ति के अनुसार खारवेल ने २४ वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते लिपि-विद्या, गणित, नीति, युद्ध-कौशल एवं कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली थी [३१]। कलिंग की अतीतकालीन आदर्श-परम्पराओं को देखते हुए यह विदित होता है कि कलिंग में ज्ञान-विज्ञान के प्रशिक्षण-केन्द्र सर्वत्र रहे होंगे। सुसंस्कृत, सुशिक्षित एवं समृद्ध समाज तथा प्रगतिशील आदर्श राष्ट्रनिर्माण के लिए संस्कृति-प्रेमी खारवेल ने भी राष्ट्र के भावी कर्णधार बालक-बालिकाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी हो तथा उनके लिए पाठशालाओं की भी सर्वत्र व्यवस्था कर दी हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

सम्राट खारवेल ने मगध पर प्रथम–विजय के उपलक्ष्य में **कल्पद्रुम-पूजा-विधान** [३२] कर उसमें बिना किसी भेद-भाव के ब्राह्मणों, श्रमणों एवं अन्य याचकों को उनकी इच्छानुसार हाथी, घोड़े, रथों एवं समृद्धियों का मुक्तहस्त से यथेच्छ दान दिया था। जैनाचार्यों ने एक उल्लेख में बताया भी है–

किमिच्छकेन दानेन जगदाशा प्रपूर्य यः ।
चक्रिभिः क्रियते सोऽर्हत् यज्ञः कल्पदुमो मतः ।। सागारधर्मामृत–आशाधर
२/२८

अर्थात् "आप क्या चाहते हैं, इस प्रकार पूछ-पूछ कर याचकों को उनकी इच्छानुसार ही उनके मनोरथों को पूर्ण करके अरिहन्त भगवान् की जो पूजा की जाती है, उसे **कल्पद्रुम-पूजा-विधान** कहा गया है।"

खारवेल का उक्त विधान एवं किमिच्छिक-दान-आयोजन इतना आकर्षक एवं भावोत्तेजक था कि कलिंग के लोगों ने सादर श्रद्धापूर्वक खारवेल का सार्वजनिक सम्मान-समारोह कर उसमें उसका **पलव-भार** अर्थात् **तुलादान** भी किया था [३३]। किसी व्यक्ति के तुलादान का यह उल्लेख विश्व-इतिहास में सम्भवतः सर्वप्रथम किया गया है, जो हाथीगुम्फा-शिलालेख में उपलब्ध है।

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि खारवेल के मन में इस बात की बड़ी चिन्ता रही होगी कि जैन-संस्कृति एवं उसकी प्रातिभिक-समुन्नति की प्रतीक तथा कण्ठ-परम्परा से निसृत **द्वादशांग-वाणी** की सुरक्षा कैसे हो ? क्योंकि उसके समय तक उसका अधिकांश भाग विस्मृत अथवा लुप्त हो गया था। अतः उसने देश के कोने-कोने

---

३०. खारवेल शिलालेख पं. ४–५
३१. वही पं. २
३२. वही पं. ६ और विशेष के लिये देखिये– छक्खंडागम–बन्ध ३/४२ पृ. ६२, प्रतिष्ठातिलक– १०/१३ पृ. ५१७, महापुराण (जिनसेन) ३८/३१, पुरुदेवचम्पू १/१, जिनसहस्रनाम–१०/११५, आदिपुराण – १७/२२१, १८/१०.
३३. खा. शि. पं. ८

से सुकृत, सुविहित, श्रमण, ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, ऋषि तथा उनके संघों के मार्गदर्शक साधकों को विनयपूर्वक **कुमारी-पर्वत** [३४] पर आमन्त्रित किया। उनकी संख्या ३५००० (पनतिसतसहसेहिं) थी। शिलालेख की पंक्ति सं. १५-१६ के अनुसार उन आमंत्रितों के लिए देश के कुशल कारीगरों द्वारा मणि-रत्न-जटित स्तम्भों वाला एक विशाल कलापूर्ण सभामण्डप बनवाया गया और उसी में **चोयट्ठि** चऊ + अट्ठि (अर्थात् चार + आठ = द्वादशांग) **आगम-वाणी** का वाचन किया गया। किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि खारवेलकालीन यह वाचना न तो वर्तमान में उपलब्ध है और प्रस्तुत शिलालेख को छोड़कर उसका कहीं कोई उल्लेख तक नहीं किया गया।

खारवेल के शिलालेख में उल्लिखित **वास्तु-निर्माण** सम्बन्धी-कार्यों से विदित होता है कि वह सौन्दर्यबोध का अतिशय धनी था। समय-समय पर अपनी सुविधानुसार राष्ट्रहित एवं समाजहित में ३५ लाख मुद्राएँ व्यय करके उसने कलिंग में सुन्दर-सुन्दर भवन, जलाशय-निर्माण, नहर का जीर्णोद्धार तथा विस्तारीकरण, जर्जर ऐतिहासिक गोपुरों एवं भवनों का जीर्णोद्धार, **प्राची नदी** के दोनों किनारों पर **महाविजय-प्रासाद-निर्माण**, राज-मार्गों का निर्माण, कुमारी-पर्वत पर अर्हत् निषिधाओं के निर्माण आदि कराये थे [३५], जो उसके वास्तु-शिल्प-ज्ञान, सांस्कृतिक अभिरुचि, कलिंग की सांस्कृतिक समृद्धि एवं उसके लोकहित-साधक-कार्यों के आदर्श उदाहरण हैं।

इन माध्यमों से उसने कुशल कलाकारों, शिल्पियों एवं श्रमिकों के लिये अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करने के अवसर भी प्रदान किये थे।

खारवेल शिलालेख के अध्ययन से विदित होता है कि विशेषज्ञ-वास्तुविदों के मार्गदर्शन में उक्त वास्तुशिल्पों के अनुभवी कुशल-कारीगरों, प्रशिक्षित-श्रमिकों तथा भवन-निर्माणादि तथा शस्त्र-अस्त्र आदि के निर्माण के लिये आयुधशालाओं की देश में कमी नहीं थी। इसी प्रकार वस्त्रोद्योग-विशेषज्ञों, सफाई-मजदूरी के पेशेवर लोगों, घरेलू उद्योग-धन्धों में लगे कर्मियों तथा संस्कृति एवं नैतिक शिक्षाओं का प्रचार करने वाले अनुभवी प्रचारकों की भी कमी नहीं थी। इस प्रकार कलिंग की सुरक्षा, समृद्धि, उत्तरोत्तर-प्रगति एवं नव-निर्माण की दिशा में उन सक्रिय सहयोगी कर्मियों को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। यद्यपि शिलालेख में इनका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता किन्तु इनके श्रम-सहयोग के बिना खारवेल की क्रियाशीलता तथा कलिंग की समृद्धि एवं प्रगति सम्भव न थी। अतः इन्हें नींव का पत्थर समझ कर कलिंग-संस्कृति का निर्माता सम्राट खारवेल जैसा उदार एवं मानवतावादी प्रशासक निश्चय ही समय-समय पर उन सभी को वात्सल्यभाव पूर्वक प्रबोधित, सम्मानित एवं पुरस्कृत अवश्य करता रहा होगा।

खारवेल-शिलालेख में प्रशासन में सहायता करने वाले पदाधिकारियों के नामोल्लेख नहीं मिलते। इससे विदित होता है कि प्रजाजन स्वतः ही आत्मानुशासित एवं कर्त्तव्यनिष्ठ थे। श्रमण-संस्कृति के प्रभाव से वे अपराध-भावना से प्रायः मुक्त थे और

३४. वर्तमानंकालीन उदयगिरि

३५. खा. शि. पं. ३

स्वतः-स्फूर्त राष्ट्र-भावना से ओत-प्रोत कर्मठ तथा पुरुषार्थी थे। यही कारण है कि एक आदर्श सम्राट की भावना के अनुरूप प्रजाजनों का आचरण रहने के कारण प्रशासक पदाधिकारियों की सम्भवतः अधिक आवश्यकता ही नहीं रही होगी। फिर भी, हाथीगुम्फा-शिलालेख के पार्श्ववर्त्ती गुफा-लेखों में अवश्य ही कुछ पदाधिकारियों के नामोल्लेख मिलते हैं। जैसे–

– महामद	=	महामात्य (Prime Minister) (जम्बेश्वर गुफा लेख)
– अतसुख वादिनक	=	अतिसुख प्रदान करने वाले अर्थात् समाज-कल्याण-पदाधिकारी (छोटा हाथीगुम्फा-गृह-लेख) (Minister for Social Welfare and Justice)
– कुमार वटुक	=	राज-परिवार के बच्चों की सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा प्रशिक्षण पर ध्यान रखने वाले पदाधिकारी (Minister for Royal Family Affairs)
– कम्महलखिण	=	कार्यवाहक-पदाधिकारी (सर्वगुहा-लेख) (Executive Officers for Different Departments)

यद्यपि उक्त मूल-शब्दावली के अर्थ स्पष्ट नहीं हैं, फिर भी इनके पदों से इनके कर्त्तव्यों एवं अधिकारों का अनुमान लगाया जा सकता है।

दक्षिणापथ में आक्रमण के प्रसंग में खारवेल ने महारट्ठ-संघ अर्थात् **असिक**, **मुसिक**, **रठिक**, **भोजक** एवं **दण्डक** जैसे सक्षम राष्ट्रों पर आक्रमण कर उन्हें भी अपने अधिकार में कर लिया था और वहाँ उसने अपनी विचारधारा की अमिट छाप छोड़ी थी[३६]। सम्भवतः यह उसी का दीर्घगामी प्रेरक-प्रभाव रहा कि परवर्त्ती-युगों में महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के कदम्ब, गंग, होयसल, पल्लव, सांतर, चालुक्य एवं राष्ट्रकूट आदि राजवंश या तो परम्परया जैन-धर्मानुयायी रहे अथवा उसके परम हितैषी बनकर उन्होंने उसके साधक आचार्यों एवं शिल्पकारों को सुविधा-सम्पन्न आश्रय-स्थल दिये और भक्तिपूर्वक उन्हें लेखन-सुविधाएँ भी प्रदान कीं। फलतः वहाँ के मनीषियों ने भी कन्नड़, संस्कृत, प्राकृत, एवं अपभ्रंश में उच्चस्तरीय विविध विधाओं एवं विषयों का विभिन्न शैलियों में शास्त्रीय एवं लौकिक विपुल साहित्य का प्रणयन किया। ऐसे महामहिम आचार्यों की श्रृंखला बड़ी ही विस्तृत है। इसकी चर्चा आगे की जायेगी।

३६. इसकी विस्तृत जानकारी के लिये "खारवेलकालीन महारट्ठ-संघ एवं जैन संस्कृति के विकास में उसका योगदान" (महाराष्ट्र जैन इतिहास परिषद् द्वारा आयोजित एवं प्रकाशित मेरी भाषणमाला, जनवरी २००२) को देखें।

कर्नाटक के जैन शिलालेख

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि अन्तिम श्रुतकेवली **आचार्य भद्रबाहु** के ससंघ कर्नाटक-प्रवेश के समय से कर्नाटक में श्रमण संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव बढ़ा। **महावंश** जैसे बौद्ध-साहित्य में भी इसके प्रमाण मिले हैं कि आचार्य भद्रबाहु के पहले भी **सिंहल-देश** तक जैनधर्म का प्रचार था। भद्रबाहु ने अपने १२००० साधु-संघ के साथ कर्नाटक में जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया। उनके बाद के कुछ वर्षों में उसके प्रभाव में कुछ कमी होने लगी थी [३७]। किन्तु **सम्राट खारवेल** ने अपनी विजय-यात्रा से वहाँ जैनधर्म को लोकप्रिय बना दिया। यह उसी की शक्ति थी कि उसने जैनधर्म के विरोध में बने सशक्त **तमिल-संघात** (United States of Tamil) को भी ध्वस्त कर दिया था [३८]।

आचार्य भद्रबाहु के पहले दक्षिण भारत में किन-किन आचार्यों ने जैनधर्म का प्रचार किया था उनके नाम तो विदित नहीं हो सके किन्तु आचार्य भद्रबाहु, उनके महा-मुनि-संघ, तत्पश्चात् **सम्राट खारवेल** ने वहाँ जैसा वातावरण बनाया और उनके बाद भी **आचार्य सिंहनन्दि** [३९] एवं **सुदत्त वर्धमान** [४०] ने जैन राजवंशों की स्थापना कर उस माध्यम से उस परम्परा को आगे बढ़ाकर श्रमण-संस्कृति एवं जैन-साहित्य के विकास में जैसा योगदान दिया, उसके उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ हैं।

यह उन पूर्व-महापुरुषों की ही देन है कि दक्षिणापथ के परवर्त्ती विभाजित प्रदेश -कर्नाटक का कण-कण जैन संस्कृति के इतिहास का जीवित इतिहास बन गया। विविध शिलालेखों एवं पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों में वहाँ के बहुआयामी इतिहास को सुरक्षित किया जाता रहा और वही वर्तमान इतिहास-लेखन के लिए प्रकाश-स्तम्भ बना हुआ है।

कर्नाटक के जैन केन्द्र एवं महान् साहित्यकार

उत्तर भारत ने भले ही तीर्थंकरों को जन्म दिया किन्तु उनकी मंगलकारी-वाणी को कर्नाटक के महामहिम आचार्यों, कवियों एवं लेखकों ने वहाँ के पुण्यात्मा श्रावक-श्राविकाओं के पूर्ण समर्पित सहयोग से लेखनी-बद्ध किया, वहाँ के राजाओं ने जैनधर्म को राज्याश्रय दिया और जैन-केन्द्रों-**श्रवणबेलगोला**, **पोदनपुर**, **कोप्पल**, **पुन्नाड**, **हनसोगे**, **तलकाट**, **हुम्मच**, **वल्लिगामे**, **कुप्पटूर** एवं **वनवासि** की स्थापनाएँ कर न केवल जिनवाणी की प्राच्य-पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखा, अपितु, परवर्त्ती आचार्यों, मुनियों, कवियों एवं

३७. विशेष के लिए देखिये—खारवेल-कालीन महारट्ठ-संघ एवं जैन-संस्कृति के विकास में उसका योगदान,

३८. हाथीगुम्फा-शिलालेख पं. सं. ११ तथा उड़िसा-रिव्यू (दिस. १९६८) पृ. १४

३९. जैन शिलालेख संग्रह भाग १ पृ. ११०

४०. कर्नाटककविचरिते पृ. ६०

लेखकों को सभी साधन उपलब्ध कराकर विविध लेखन-कार्यों के लिए प्रेरणाएँ भी प्रदान की और उन्होंने भी प्राकृत, संस्कृत अपभ्रंश और कन्नड़ में शाश्वत कोटि के विविध विषयक शताधिक ग्रन्थों की एक लम्बी श्रृंखला तैयार कर दी, जिनमें–

शौरसेनी प्राकृत में आचार्य कुन्दकुन्द एवं वट्टकेर (ई.पू. प्रथम सदी के लगभग) स्वामी कार्तिकेय (तीसरी सदी ईस्वी के लगभग), सि.च. आचार्य नेमिचन्द्र (१०वीं सदी ईस्वी) एवं, वसुनन्दि (१२वीं सदी पूर्वार्ध)–

संस्कृत में आचार्य उमास्वामी (दूसरी सदी), देवनन्दि-पूज्यपाद (५वीं सदी), जटासिंह-नन्दि (७वीं सदी), भट्ट अकलंक (७४५–७४६ ई.), रविषेण (८वीं सदी), गणितज्ञ महावीराचार्य (८वीं सदी), स्वामी वीरसेन (सन् ८१६ ई.), जिनसेन (९वीं सदी), गुणभद्र (९वीं सदी), सोमदेव-सूरि (१०वीं सदी), आचार्य विद्यानन्दि (१०वीं सदी), प्रभाचन्द्राचार्य (१०वीं सदी), श्रीधराचार्य ज्योतिषी (१०वीं सदी), आयुर्वेदज्ञ-आचार्य उग्रादित्य (१०वीं सदी), इतिहासकार वादिराज सूरि (११वीं सदी), मल्लिषेणसूरि (११वीं सदी), इतिहासज्ञ आचार्य-प्रवर-इन्द्रनन्दि (१२वीं सदी) एवं, मुनिचन्द्र देव (१३वीं सदी), –

अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू (८वीं सदी), पुष्पदन्त (१०वीं सदी) एवं धवल (११वीं सदी), **कन्नड़** के आद्य चम्पूकार आदि-पम्प (९४७ ई.), काव्य-सुधा-धारा को प्रवाहित करने वाले रन्न (९४९ ई.), माइथो-हिस्टोरियन-पोन्न (९५० ई.), चामुण्डराय (९७८ ई.), दिवाकर नन्दि (१०६२ ई.), शान्तिनाथ (१०६८ ई.), कवि नागचन्द्र (अभिनव पम्प) एवं, नागवर्मा द्वितीय (लगभग ११०० ई.), महान कवियित्री कन्ती (लगभग ११०० ई.), राजादित्य (सन् ११०० ई.), नयसेन (सन् १११२ ई.), कीर्ति वर्मा (सन् ११२५ ई.), ब्रह्मशिव (लगभग ११२५ ई.), कर्णपार्य (सन् ११४० ई.), नागचन्द्र कवि (सन् ११४५ ई.), नेमिचन्द्र (सन् ११७० ई.), सोमनाथ (११५० ई.), वृत्तविलास (सन् ११६० ई.), कवि बालचन्द्र (११७० ई.), बोप्पण (११८० ई.), कोप्पण एवं, अग्गल (११८९ ई.), आचण्ण (११९५ ई.), बन्धुवर्मा (सन् १२००ई.), पार्श्व-पण्डित (१२०५ ई.), जन्न (१२०९ ई.), गुणवर्मा द्वितीय (१२३५ ई.), कमलनव (१२३५ ई.), महाबल (सन् १२५४ ई.), बाहुबलि पण्डित (१३४० ई.), विजयण्ण (१४०० ई.), पदम (१५५० ई.), पुराणेतिहासकार दोड्डय्य (१५५० ई.), पशुचिकित्सक-कीर्तिवर्मा (११२५ ई.) और उनका कन्नड़ ग्रन्थ-गोवेव), चिकित्सक जगद्दल सामन्त (११५० ई.), **कन्नड़** चिकित्साग्रन्थ-कल्याणकारक (आचार्य पूज्यपाद के कल्याणकारक का कन्नड़ अनुवाद), **सूपशास्त्र** के लेखक मंगरस (१५०८ ई.), षट्पदिसाहित्यकार रत्नाकर वर्णी (१५५७ ई.), महान् सांगत्य-साहित्यकार चन्द्रम् (१६०५ ई.), पद्मनाभ (१६८० ई.), प्रभृति ऐसे आचार्य-लेखक प्रमुख हैं, जिन्होंने शाश्वत कोटि के उच्चस्तरीय साहित्य की रचना की, जो आज भी इतिहासकारों, लेखकों, समीक्षकों, भाषा-विज्ञानियों एवं दार्शनिकों के लिये न केवल प्रकाश-स्तम्भ हैं, अपितु, प्राच्य भारतीय-विद्या के गौरव के स्वर्णिम-अग्रशिखर भी माने गये हैं। इसी प्रकार–

वीर **वेनेय**, सेनापति **चामुण्डराय**, महामन्त्री **भरत** एवं **नन्न** आदि जैन वीरों तथा कर्नाटक आदि की अनेक आदर्श जागृत महिलाओं में महासति **अत्तिमब्बे**, **जक्कियव्वे**,

पामव्वे, **पम्पादेवी** आदि को पराक्रमी, राष्ट्रवादी एवं जिनवाणी-भक्त बनाने तथा सामाजिक सुधारों में उन्हें अग्रणी बनाने में कर्नाटक की पुण्यभागा तीर्थरूपा भूमि तो है ही, परोक्ष रूप में **सम्राट खारवेल** द्वारा स्थापित उसकी दूर-दृष्टि सम्पन्न सांस्कृतिक चेतना की प्रभावक वेगवती प्रच्छन्न प्रवाहित धारा ही प्रतीत होती है।

आदिपम्प (९४७ ई.) सम्भवतः ऐसा प्रथम कन्नड़ जैन कवि था, जिसने कन्नड़ के **आदिपुराण** नामक महाकाव्य में लिखा है कि–"भरत ने अयोध्या में सम्राट पद ग्रहण किया। हिमवत-पर्वत से लवण सागर पर्यन्त षट्खण्ड भूमण्डल उसका शासन मानता था। उसके धर्म-प्रेम की कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त थी। प्रजा भी राजा की भाँति धर्म में अनुरक्त थी। **वृषभ-पुत्र भरत इस देश का प्रथम चक्रवर्ती-सम्राट हुआ। इसीलिए उसके नाम पर आज भी यह देश "भारत" कहलाता है।**"

अन्य पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों में भी इसी प्रकार के अनेकविध ऐतिहासिक प्रसंग उपलब्ध होते हैं।

जैन इतिहास के विशेषज्ञ विद्वान् श्री **नरसिंहाचार्य** ने अपने **कर्नाटक-कविचरिते** में कर्नाटक के कन्नड़ कवियों की गणना करते हुए बताया है कि कन्नड़-भाषा के २८० कवियों में से सबसे अधिक संख्या जैन-कवियों की ९५ है, उसके बाद लिंगायत-कवियों की संख्या ९० है, ब्राह्मण-कवियों की संख्या केवल ४५ तथा अवशिष्ट ५० में अन्य फुटकर कवि आते हैं [४०]।

कर्नाटक के जैन सेनापति

कर्नाटक के शिलालेखों में यह देखकर आश्चर्यचकित होकर रह जाना पड़ता है कि परमसात्विक अनेक श्रावक, एक ओर तो राष्ट्रभक्त, वीर-पराक्रमी सेनापति हैं, तो दूसरी ओर वही सेनापति, जैन-संस्कृति के संरक्षक, जैन-मन्दिरों के उद्धारक एवं मूर्त्ति-निर्माता होने के साथ-साथ उच्चकोटि के ग्रन्थकार भी हैं।

गंग-नरेश मारसिंह के सेनापति तथा **मुनि अजितसेन** के शिष्य और सि. च. **आचार्य नेमिचन्द्र** के स्नेहभाजन रहने वाले समर-धुरन्धर **वीरवर चामुण्डराय** (९७८ ई.) के बहुआयामी व्यक्तित्व को कौन नहीं जानता, जिसने विश्व को आश्चर्यचकित कर देने वाली **गोम्मटेश्वर** की उत्तुंग-काय कलापूर्ण ५७ फीट ऊँची मूर्ति का निर्माण करवाया और उसके सौन्दर्य को देखकर **महाकवि वोप्पण** की गर्वीली लेखनी भी उसके वर्णन के लिये स्तम्भित जैसी हो गई थी तथा विवश होकर उसे लिखना पड़ा था कि–मेरे पास तो केवल टूटे-फूटे असमर्थ अथवा विकलांग शब्द मात्र ही हैं, फिर भी मैं यह कहने के लिये बाध्य हूँ कि–

अतितुंगाकृतियादोडागदद रोल्सौनदर्य्र मौन्नत्यमुं
नुतसौन्दर्यनुभागे मत्त तिशयंतानागदोन्नत्यमुं ।

४०. कर्नाटककविचरिते पृ. ९०

नुतसौन्दर्यमुमूर्ज्जिता शियमुं तन्नल्लि निन्दिदर्दुवं,
क्षिति सम्पूज्यमो गोम्मटेश्वर जिनश्री रुपमात्मोपमं ।।

अर्थात् कोई भी मूर्ति जब आकार में बहुत ऊँची एवं विशाल होती है, तब उसमें सौन्दर्य का प्रायः अभाव रहता है। यदि वह विशाल भी हुई और उसमें सौन्दर्य भी हो, तो भी उसमें दैवी-चमत्कार उत्पन्न करना कठिन है। लेकिन गोम्मटेश की इस मूर्ति में उक्त तीनों का समन्वय हो जाने से उसकी छटा चमत्कारपूर्ण, अलौकिक, अभूतपूर्व एवं वर्णनातीत हो गई है।

चामुण्डराय ने अपने जीवन में राष्ट्रहित एवं समाजहित में जहाँ ८४ युद्ध करके उनमें शानदार विजय प्राप्त की थी, वहीं उसने अवकाश के क्षणों में **चामुण्डराय-पुराण** जैसी अमूल्य कृति का प्रणयन कन्नड़-भाषा में तथा **चारित्रसार (आचारसार)** नामक ग्रन्थ का प्रणयन संस्कृत में कर अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध की है।

होयसल-नरेश विष्णुवर्धन के ८ सेनापति थे और वे भी सभी जैन थे। यथा-**गंगराज**, **बोच्च**, **पुण्णित**, **बलदेव**, **मेरियन**, **भरत**, **ऐच**, और **विष्णु**। ये सभी पराक्रमी तो थे ही, जैन संस्कृति के आपादमस्तक संरक्षक भी। अन्य पराक्रमी सेनापतियों में सेनापति **हुल्ल**, सेनापति **देवराज**, सेनापति **शान्तियण्ण**, सेनापति **ईश्वर चमूपति**, **रेचिमय्य**, सेनापति **एचिरल** तथा सेनापति **अमृत** के नाम भी अविस्मरणीय हैं। कर्नाटक के शिलालेखों में इन सभी के विस्तृत प्रेरक परिचय उपलब्ध हैं [४१]।

गंग-वंश और उसके संस्थापक आचार्य सिंहनन्दि

श्रवणवेलगोल के शिलालेख सं. ५६ के अनुसार उत्तर-भारत के **इक्ष्वाकुवंशी दडिग** एवं **माधव** नामके दो राजकुमार दक्षिण भारत की यात्रा पर निकले और **पेरूर** नामक ग्राम के एक सरोवर-तट पर स्थित चैत्यालय में उनकी भेंट मूलसंघी, कुन्दकुन्दान्वयी काणूरगण के मेषपाषाण गच्छ के **आचार्य सिंहनन्दि** से हुई। दोनों ही दोनों की तेजस्विता से प्रभावित हुए। इस सम्मिलन से प्रमुदित होकर **पद्मावती देवी** ने प्रकट होकर उन राजकुमारों को तलवार एवं राज्य प्रदान किया। **सिंहनन्दि** ने उन दोनों को प्रशासन करने की शिक्षा प्रदान की। वहीं पर एक पाषाण-स्तम्भ साम्राज्य की देवी के मुख्य प्रवेशद्वार में प्रवेश के लिये बाधक बना हुआ था। सिंहनन्दि के आदेश से **राजकुमार माधव** ने उसे ध्वस्त कर डाला। अतः सिंहनन्दि ने उसे एक राज्य का शासक घोषित कर दिया [४२]।

उक्त शिलालेख के अनुसार ही जब वे राजकुमार प्रभावक शासक बन गये, तब **सिंहनन्दि** ने उन्हें इस प्रकार की शिक्षाएँ प्रदान कीं–

(१) यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण न करोगे अथवा जिन–शासन की सहायता न करोगे,

(२) परस्त्रियों का अपहरण करोगे या कराओगे,

---

४१. जैन शिलालेख संग्रह (माणिक. दि. जैन ग्रंथमाला) तृतीय भाग

४२. इस संदर्भ सूचना के लिये मैं **आचार्य श्री विद्यानन्द जी** का आभारी हूँ।

(३) मद्य-माँस का सेवन करोगे,
(४) अधम-मनोवृत्ति वालों की संगति में रहोगे,
(५) जरूरत-मन्दों के लिये धन-दान या परोपकार न करोगे और यदि, –
(६) रणक्षेत्र में पीठ दिखाओगे, तो तुम्हारा राज्य एवं राज्यवंश देखते ही देखते नष्ट हो जायेगा [४३]।

एक शिलालेख [४४] के अनुसार इस **गंग-वंश** का अभेद्य दुर्ग **नन्दिगिरि** पर स्थित था, जिसकी राजधानी **कुवलाल** थी। इस वंश का ९६ हजार देशों (ग्रामों) पर आधिपत्य था। जिनेन्द्रदेव उसके अधिदेवता थे। रणविजय ही उनका साथी था। ये (दडिग एवं माधव) जैनधर्म के परम आराधक थे और इन्हीं शक्तियों के साथ वे अपने राज्य का शासन-कार्य करते थे।

गंग-राज्यवंश की स्थापना सम्बन्धी उक्त तथ्य का समर्थन सं. १२३६ के शिलालेख से भी होता है, जिसका परीक्षण **विंसेंट स्मिथ** [४५], **लुईस राईस** [४६], **डॉ. सलेत्तोर** [४७] आदि ने करके उसकी प्रामाणिकता पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

आगे चलकर इसी वंश में श्रीमत् **कोंगुणि वर्मा** का धर्म-महाराजाधिराज विरुदधारी विद्वान-पुत्र **दुर्विनीत** हुआ। इसी दुर्विनीत ने **गुणाढ्य** की **बृहत्कथा** का संस्कृत में अनुवाद तथा **किरातार्जुनीय महाकाव्य** के १५ वें सर्ग की संस्कृत-टीका भी **लिखी** थी [४८]।

इन राजाओं की विद्वत्ता का मूल कारण यह था कि वे आचार्य **देवनन्दि-पूज्यपाद** के भक्त-शिष्य थे। गंगराज **अविनीत** (वि.सं. ५२३) ने उन्हें केवल सम्मान ही नहीं दिया था, अपितु अपने पुत्र राजकुमार दुर्विनीत को उनके सान्निध्य में शिक्षा भी प्रदान कराई थी।

राष्ट्रकूट वंश

गंगवंशी नरेशों के समान ही राष्ट्रकूट-वंशी नरेशों के यशस्वी कार्यकलापों की चर्चा भी शिलालेखों में मिलती है। राजा **शिवमार** (द्वितीय) के राज्यकाल में राष्ट्रकूटों ने **गंगवाडी** पर अधिकार किया अवश्य, किन्तु जैनधर्म के प्रति अटूट-भक्ति में वे भी गंगों सें पीछे न रहे। वि. सं. ८११ सं १०३१ तक राष्ट्रकूट-वंशी नरेशों ने कर्नाटक पर शासन किया।

राष्ट्रकूट-नरेश **दन्तिदुर्ग** (अपरनाम साहसतुंग) ने जैन-न्यायशास्त्र के पिता माने जाने वाले **भट्ट अकलंकदेव** का सार्वजनिक सम्मान किया था। **श्रवणवेलगोल** में

४३. Salatore's Medieval Jainism P. 11
४४. जैन शिलालेख संग्रह भा. २, लेखांक २४४
४५. The Oxford History of India P. 199
४६. Mysore Gazetteer Vol. I P. 308-310.
४७. Mysore Gazetter Vol. I P. 311.
४८. Medieval Jainism P. 22-23.

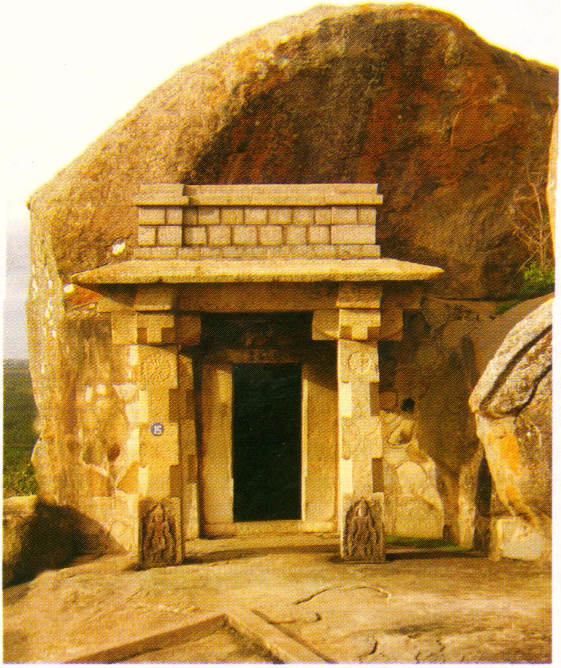

आचार्य भद्रबाहु गुम्फा - मगध के द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल के समय आचार्य भद्रबाहु (ई.पू. चौथी सदी) अपने नवदीक्षित शिष्य मगध-सम्राट चन्द्रगुप्त (मौर्य प्रथम) तथा १२००० साधु-संघ के साथ कलवप्र (श्रवणबेलगोला) पधारे थे। आचार्य भद्रबाहु ने इसी गुम्फा में बैठकर तपश्चर्या की थी। उसमें उनके चरण-चिन्ह आज भी उपलब्ध हैं।

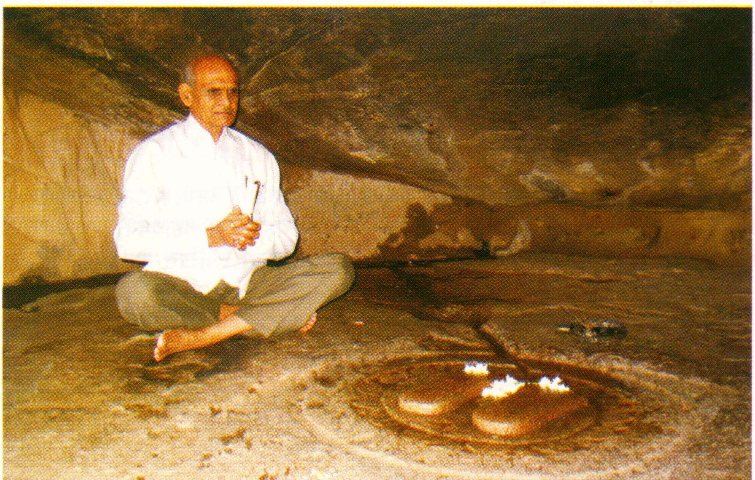

आचार्य भद्रबाहु की गुम्फा (चन्द्रगिरि, श्रवणबेलगोला) में ध्यानमग्न डा. राजाराम जी जैन।

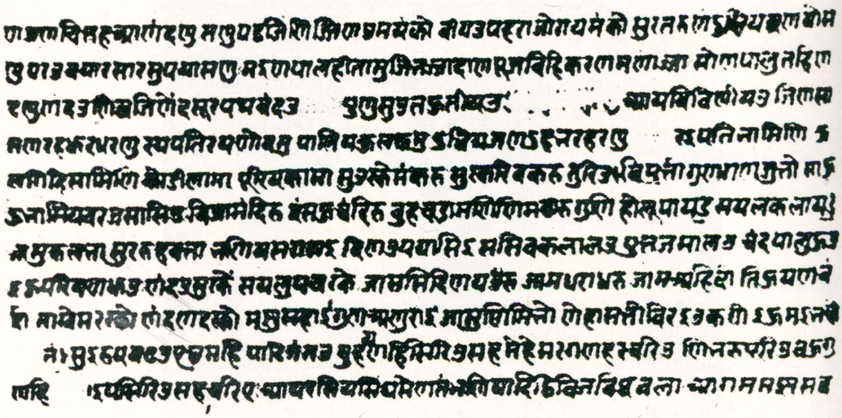

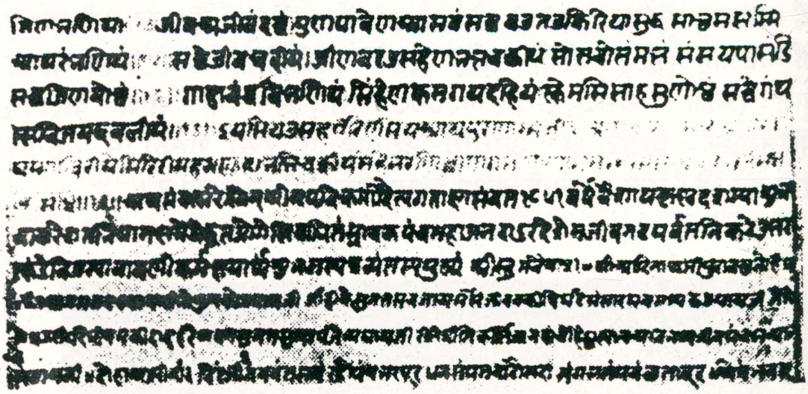

आदिपुराण (नजीबाबाद प्रति) प्रथम एंवं अन्तिम पत्र बाबू जगतप्रसाद जी जैन (डालमियानगर, नजीबाबाद) के सौजन्य से प्राप्त। वस्तुतः यह ग्रन्थ महाकवि रइधू द्वारा लिखित मेहेसचरिउ है, किन्तु किसी प्रतिलिपिकार ने इसे सिंहसेन द्वारा लिखित आदिपुराण बताया है।

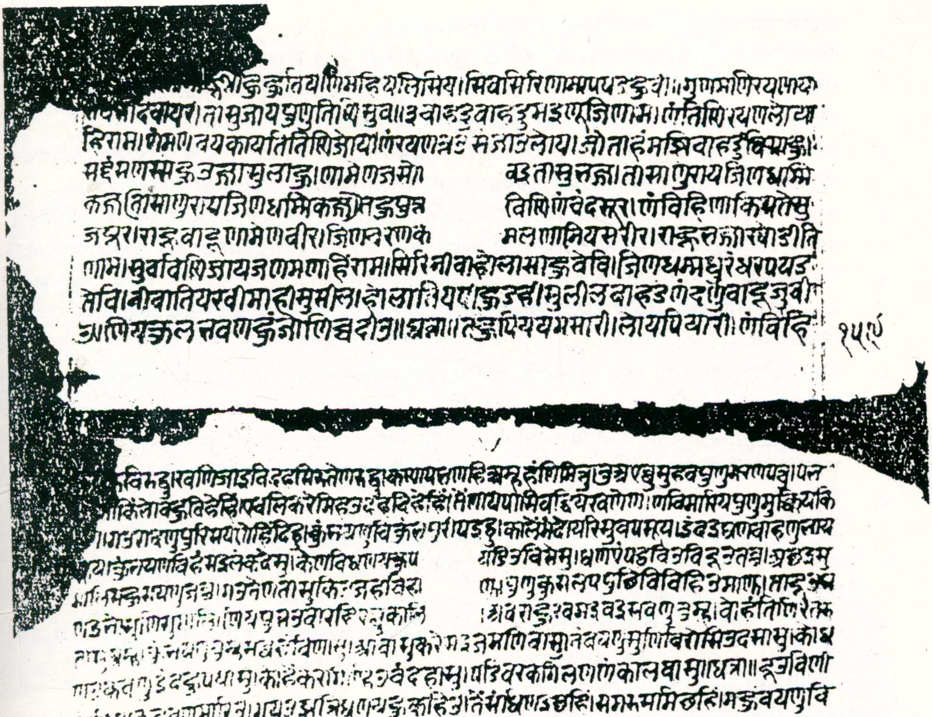

महाकवि रइधू कृत पउमचरिउ (दिल्लीप्रति) की अप्रकाशित जीर्णशीर्ण प्रति के कटे–फटे दो पत्र
(पं. पन्नालालजी अग्रवाल, नई दिल्ली के सौजन्य से फोटो प्रति प्राप्त)

हाथीगुम्फा-शिलालेख के मूल ब्राह्मीलिपि का देवनागरी रूपान्तरण
- आचार्य श्री विद्यानन्द मुनिराज जी द्वारा प्राप्त (दे. पृ. १७)

१. णमो अरहंतानं णमो सवसिधानं ऐरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराजवसवधेन पसुथसुभलखनेन चतुरंत-लुठणगुण उपेतेन कलिंगाधिपतिनासिरिखारवेलेन

२. पंदरसवसानि सिरिकडारसरीरवता कीडिता कुमारकीडिका ततो लेखरूपगणनाववहारविधि विसारदेन सवविजावदातेन नववसानि योवराजपसासितं संपुणं चतुवीसतिवसो तदानि वधमानसेसयो वेणाभिविजयो ततिये

३. कलिंगराजवसे पुरिसयुगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति अभिसितमतो च पधमे वसे वातविहतगोपुरपाकारनिवेसनं पटिसंखारयति कलिंगनगरि खिबीर इसीतालतडागपाडियो च बंधापयति सवूयानपटिसंठपनं च

४. कारयति पणतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति दितिये च वसे अचितयिता सातकंणिं पछिमदिसं हयगजनररधबहुलं दंडं पठापयति कन्हबेनं गताय च सेनाय वितासिति असिकनगरं ततिये पुन वसे

५. गंधववेदबुधो दपनतगीतवादितसंदसनाहि उसवसमाजा-कारापनाहि च कीडापयति नगरिं तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहतपुवं कलिंगपुवराजनिवे ....तं ......त ......वितधि मकुटसविल........ते च निखितछत

६. भिंगारे हितरतनसपतेये सवाठिकभोजके पादे वंदपयति पंचमे चेदानी वसे नंदराजतिवससत ओघटितं तनसुलियवाटा-पनाडिनगरं पवेस ....ति सो ....भिसितो च ....सेयं संदसयंतो सबकरवण

७. अनुगह अनेकानि सतसहसानि विसजति पोरजानपदं सतमं च वसं पसासतो वजिरघरवतिघुसितधारिनि स मतुकपद-पुंनोदयत .... अठमे च वसे महती सेनाय म .... गोरधगिरिं

८. घातापयिता राजगहं उपपीडपयति एतिना च कंमपदान सनादेन संबतसेने वाहने विपमुचितं मधुरं अपयातो यवनराजडिमित .... यछति ति .... पलवभार

९. कमरुखे हयगजरथसह यंति सवघरावासपरिवसने अगि ....या सवगहनं च कारयितुं बाम्हणानं जति परिहारं ददाति अरहतो .... व .... स ....गीयत

१०. ....मानति राजनिवासं महाविजयपासादं कारयति अठतिसाय सतसहसेहि दसमे च वसे दंडसंधीस .... मयो भरधवसपठानं महजय .... कारापयति ....पयातानं .... मनिरतनानि उपलभते

११. पुवराजनिवेसितं पीथुंडुं गदभनंगलेन कासयति जनपदभावनं च तेरसवससतकतं भिदति तमिरदेहसंघातं बारसमे च वसे ....सेहि वितासयति उतरापधराजानो

१२. मागधानं च विपुलं भयं जनेतो हथसुगंगीय पाययति मगध च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति कालिंगजिनं संनिवेस ....रतनपरिहरेहि अंगमगधवसुं च नयति

१३. कतुजथरलखिल गोपुरानि सिंहरानि निवेसयति सतविसिकनं परिहारेहि अभुतमछरियं च हथीनादनं परिहरहि ....हयहथीरतनमाणिक पंडराजा चेदानि अनेकमुतमणिरतनानि आहरपयति इध सत

१४. नो वसीकरोति तेरसमे च वसे सुपवतविजयचके कुमारीपवते अरहते पखिणसंसितेहि कायनिसीदियाय यापूजावकेहि राजभतिनि चिनवतानि वससतानि पूजानुरत उवास .... रवेलसरिना जीवदेह का परिखिता

१५. सकत-समण-सुविहितानं च सवदिसीनं ञानिनं तपसि इसिनं संघयनं अरहतनिसीदिया समीपे पभारे *वराकारसमुथापिताहि अनेकयोजनाहिताहि प .... सिलाहि सिंहपथरानि सिधुळाय*

१६. पटलको चतरे य वेडुरियगभे थंभे पतिठापयति पानतरिय सतसहसे .... मुरियकालवोछिनं च चोयठअंगसतिकं तुरियं उपादयति खेमराजा स वढराजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनतो अनुभवतो कलानानि

१७. युगविसेसकुसलो सवपासंडपूजको सवदे .... तनसंकारकारको अपतिहत चकीवाहनबलो चकधुरो गुतचको पवतचको राजसि वसकुलविनिम्रितो महाविजयो राजा खारवेलसिरि

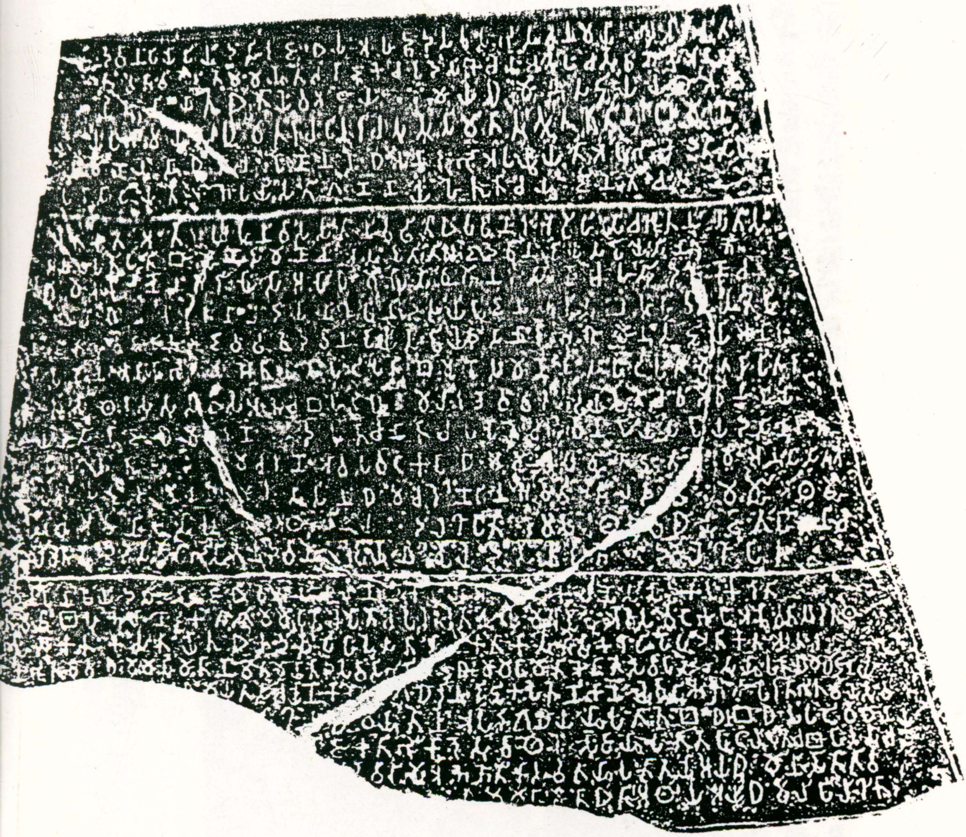

सम्राट अशोक के गिरनार-पर्वत की तलहटी में प्राप्त तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम शिलालेख, जिनमें सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य में शान्ति-व्यवस्था, सर्वधर्मसमन्वय, प्राणि-हत्या-निषेध तथा सुशासन हेतु नियुक्त विविध अधिकारियों के कर्त्तव्यों एवं अधिकारों की चर्चा की है।

(काल ई.पू. चौथी सदी, लिपि–ब्राह्मी, भाषां प्राकृत)

वनवासी राम हनुमान को अपनी पहिचान-मुद्रा देकर उन्हें सीता खोज करने के लिए प्रेषित करते हैं।

हनुमान सीता का पता लगाकर तथा सीता की पहिचान-मुद्रा राम को अर्पित करते हैं।

हनुमान द्वारा बताए हुए मार्ग से राम वानर सेना के साथ लंका की ओर जा रहे हैं। रामयशोरसायनरास (मुनि देशराज) रे श्रीमान् बाबू सुबोधकुमार जैन (आरा, बिहार) के सौजन्य से प्राप्त। (दे. पृष्ठ सं. ६)

श्री सीताजी की अग्निपरीक्षा।
मुनि केशराज कृत रामयशोरसायनरास (जैन-रामायण) जैन सिद्धान्त भवन, आरा (बिहार) से प्रकाशित और श्री सुबोधकुमार जैन के सौजन्य से प्राप्त। (दे. पृष्ठ सं. ६)

पिष्टनिर्मित मुर्गे की बलि हेतु माता चन्द्रमती द्वारा यशोधर को प्रोत्साहन (निजी पाण्डुलिपि) (यशोधर चरित - डा. कमला गर्ग, भारतीय ज्ञानपीठ, १६६१ से साभार)

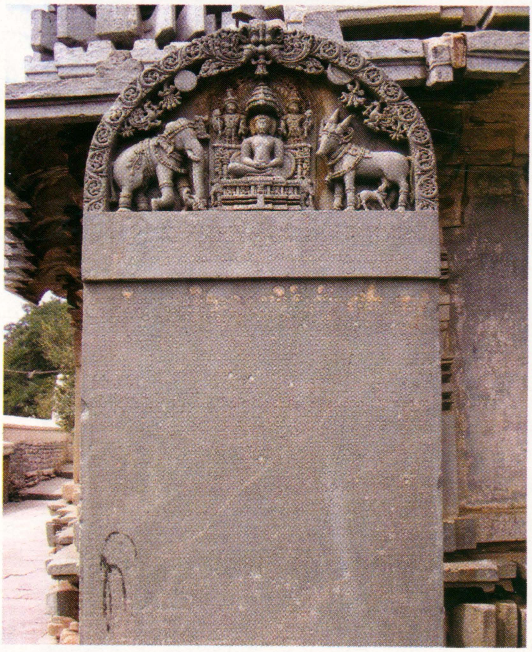

श्री धवल तीर्थ श्रवण बेलगोला (कर्नाटक) में चंद्रगिरि पर स्थापित एक अति सुन्दर पाषाण लेख अथवा प्रस्तर पांडुलिपि।
(लगभग ११ वीं-१२ वीं सदी)

अभिमानमेरु, अभिमान-चिन्ह एवं काव्य-पिशाच जैसे विरुदधारी तथा सरस्वती को भी चुनौती देने वाले महान् स्वाभिमानी अपभ्रंश महाकवि पुष्पदन्त किसी बात पर अपमान का अनुभव कर चुपचाप अपने नरेश का राज्य छोड़कर एक निर्जन वन में पहुँचे तथा वहाँ एक वृक्ष के नीचे जब विश्राम कर रहे थे, तभी सहसा राष्ट्रकूट-नरेश के महामन्त्री भरत नन्न के साथ वहाँ पहुँचते हैं और उनके निर्जन वन में अकेले ही भटकने का कारण पूछते हैं, तो वे अपने उत्तर में कह रहे हैं - पहाड़ की गुफा में रहकर घास-फूस खाकर जीवन-यापन कर लेना अच्छा, किन्तु अविवेकी तथा टेढ़ी-मेढ़ी भौहों को देखते-सहते हुए किसी का सुस्वाद भोजन करना उपयुक्त नहीं।

महाकवि पुष्पदन्त कृत अपभ्रंश आदिपुराण (महापुराणान्तर्गत) की प्रशस्ति से–प्रो. डॉ. कमलचन्द जी सोगानी, जयपुर के सौजन्य से प्राप्त।

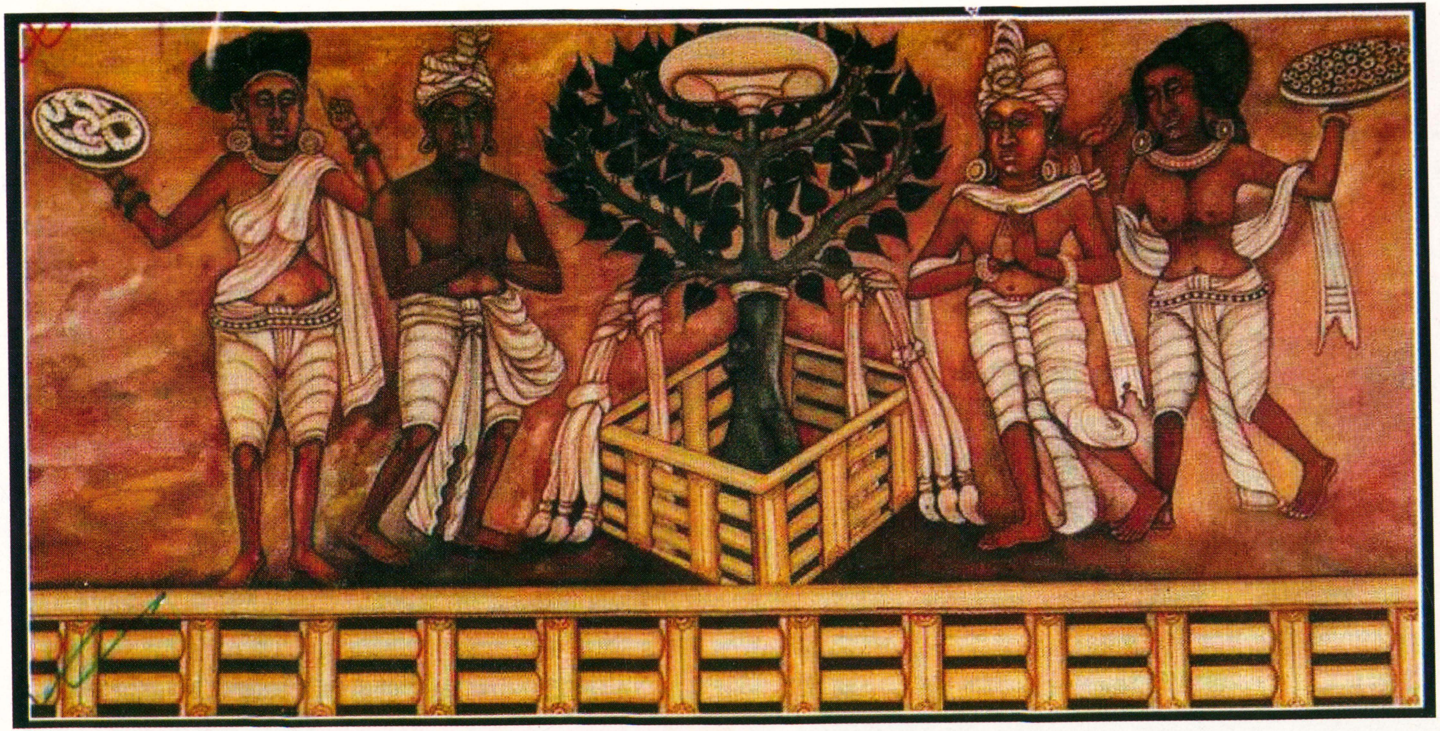

चक्रवर्ती-पद प्राप्त करने के बाद सम्राट खारवेल ने कल्पवृक्ष महापूजा की थी, जिसमें उसने अगणित ब्राह्मणों एवं श्रमणों को मुँहमाँगा दान दिया था। खारवेल कल्पवृक्ष की पूजा करता हुआ। (खरवेल शिलालेख पंक्ति संख्या ६), उदयगिरि गुफाओं के भित्ति चित्रों पर आधारित श्यामसुन्दर पटनायक की पेंटिंग्स से साभार (दे. पृष्ठ सं. २७)

उपलब्ध **मल्लिषेणप्रशस्ति** में एक रोचक घटना की सूचना मिलती है। उसके अनुसार अकलंकदेव अपने सम्मान की प्राप्ति के उपलक्ष्य में राजा दन्तिदुर्ग से कहते हैं [४६] –

राजन् ! साहसतुंग सन्ति बहवो श्वेतातपत्राः नृपाः
किन्तु त्वत्सदृशरणे विजयिनसत्यानोन्नता दुर्लभाः ।
तद् वत् सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो,
नाना–शास्त्र–विचारचातुरधियः काले कलौ मद्विधाः ।।

अर्थात् हे राजन्, हे साहसतुंग नृप, श्वेत वर्ण वाले छत्र के धारक तो अनेक हैं, किन्तु आपके सदृश रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करने वाले नरेश दुर्लभ ही हैं और हे नृप, विद्वान् तो अनेक हैं किन्तु इस कलि-काल में नाना प्रकार के शास्त्रों के विचारों में चतुर बुद्धिवाले मेरे समान वाग्मी और वादीश्वर भी दुर्लभ ही हैं।

कर्नाटक के शिलालेखों से यह भी स्पष्ट विदित होता है कि वहाँ के राजवंशों की स्थापना में जिस प्रकार जैनाचार्यों का सक्रिय सहयोग रहा, उसी प्रकार वहाँ के श्रावक-श्रेष्ठियों, श्राविकाओं तथा कृषकवर्ग का भी अपने राज्यों की श्री-समृद्धि एवं श्रमण-संस्कृति के विकास में अपरिमित योगदान रहा।

वस्तुतः वहाँ के तपःपूत जैनाचार्यों ने सुयोग्य व्यक्तियों को राजनीति, अर्थनीति, रणनीति, विधि-व्यवस्था तथा चिकित्सा आदि की शिक्षाएँ प्रदान कर अथवा करवाकर उन्हें योग्य बनाया और उन्होंने भी कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु साम्राज्य के सर्वांगीण विकास के लिये हर प्रकार के समर्पित रचनात्मक सहयोग किये। इन्हीं के कारण कर्नाटक का मध्यकाल स्वर्णकाल बन सका।

इन लोगों की कुशलता तथा आर्थिक सहयोग से **हुम्मच** के **पट्टण-स्वामी** का जिनालय, **मागुडी** का विशाल जिनालय, **एक्कोटि** जिनालय, **होल्ललकेरे** में शान्तिनाथ की जीर्णवसदि के उद्धार के साथ-साथ उन्होंने सामान्य जनता के लिये अनेक जलकूपों, सरोवरों, धर्मशालाओं एवं विद्यालयों के निर्माण कराये। ऐसे धनकुबेर शेट्टियों (या श्रेष्ठियों) में **सम्यक्त्ववाराशि**, **नोक्करय शेट्टि** (सन् १०६२), तत्वार्थसूत्र की कन्नड़-टीका कर्त्ता **दिवाकर-शेट्टि**, शिलाहार सेनापति **कालन**, रट्टनरेश **कार्तवीर्य**, **शंकर सामन्त** (१२८२ ई.) **मुम्मुरि दण्ड**, **सोम गौडा**, **बाहुबलि शेट्टि**, **पारिशेट्टि**, **अरेय-मरेय नायक**, आदि की गौरव-गाथाएँ वहाँ के शिलालेखों में भरी पड़ी हैं।

कर्नाटक की यशस्विनी महिलाएँ

शिलालेखों में मध्यकालीन यशस्विनी जैन महिलाओं के विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक योगदानों की भी चर्चाएँ आई हैं। **नागरखण्ड** की प्रशासिका वीरांगना तथा सुश्राविका **जक्कियव्वे** (९११ ई.), सेनापति **नागदेव** की पत्नी **अत्तिमव्वे** (१०वीं सदी), जिसने कि कवि **पोन्न कृत शान्तिनाथ पुराण** की ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि की १००० प्रतिलिपियाँ कराकर समस्त जैन-केन्द्रों एवं मन्दिरों में सुरक्षित कराते हुए, स्वर्ण एवं

४६. श्रवणवेलगोला में उपलब्ध मल्लिषेण-प्रशस्ति

हीरा-माणिक्यादि की १५०० मूर्तियों का निर्माण कराया था। ३० वर्षों तक कठोर तपस्या करने वाली विदुषी साधिका **पामव्वे** (६७१ ई.) **राजेन्द्र कोंगालव** की विदुषी श्राविका माता **पोचव्वरसी** (१०५० ई.), कदम्ब-शासक **कीर्तिदेव** की ज्येष्ठा रानी **मालल देवी** (१०७७ ई.) शान्तर-राजवंश की अनेक मन्दिरों, वसदियों, सरोवरों, स्नानगृहों, दानशालाओं एवं शिक्षालयों की निर्मात्री **चट्टलदेवी** (११वीं सदी), वादीभसिंह, अजितसेन, पण्डितदेव की शिष्या **राजकुमारी पम्पादेवी**, गंगराज रानी **लक्ष्मीयाम्बि** के सेनापति **बोप्प** की धर्मपत्नी सुश्राविका **जक्कणव्वे**, जैन-सेनापति पुण्णितमय्य की धर्मपत्नी **जक्कियव्वे**, होयसलनरेश **विष्णुवर्धन** की धर्मपत्नी तथा **श्रवणबेलगोला** में **सवत्तिगन्धवारण-वसदि** की निर्मात्री सुश्राविका **शान्तला देवी** (११३१ ई.), **चन्द्रमौलि** मन्त्रिवर की धर्मपत्नी **आचलदेवी** आदि ऐसी सन्नारियाँ हैं, जिनके अनेकविध लोककल्याणकारी कार्यों के लिये विभिन्न कन्नड़ एवं संस्कृत शिलालेखों में सादर स्मरण किया गया है।

होयसल-वंश के संस्थापक सुदत्त-वर्धमान

दक्षिण भारत के सन् ११७६ के एक शिलालेख के अनुसार जिस प्रकार गंग-वंश की स्थापना दडिग एवं माधव की कठिन परीक्षा लेकर उन्हें राज्यासीन कराया गया था, उसी प्रकार **श्रवणबेलगोला** के शिलालेख सं. ५६ के अनुसार **सुदत्त वर्धमान** ने भी अपने शिष्य **सल** की कठिन परीक्षा लेकर उसे राज्याभिषिक्त कराया था। प्राणिहन्ता विकराल सिंह को मार देने के कारण इसी सल का नाम **पोयसल** (मारसल) हुआ, जो आगे चलकर **होयसल** के नाम से प्रसिद्ध हुआ [५०]। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, कर्नाटक के मध्यकालीन जैन-शिलालेखों से स्पष्ट विदित होता है कि इस राजवंश ने प्रजाजनों के कल्याण के लिये जहाँ अनेक मन्दिरों, कूपों, तड़ागों एवं बावड़ियों के निर्माण कराये, अनेक जैन-मन्दिरों के जीर्णोद्धार एवं नव-निर्माण में सहायताएँ की, जैन मुनियों, आचार्यों को सम्मान दिया, वहीं जैन-साहित्य एवं साहित्यकारों को आश्रयदान भी दिया।

मूलसंघी देशीगण कुन्दकुन्दान्वयी **देवेन्द्र सिद्धान्ति देव**, चतुर्मुखदेव के शिष्य **गोपनन्दि पण्डितदेव**, **राजा बल्लाल** (प्रथम) के गुरु **चारुकीर्ति मुनि**, (सन् ११००–११०६), **श्रुतकीर्तिदेव**, **रानी शान्तला देवी**, गुरु **श्रीपाल त्रैविद्यदेव**, सम्यक्त्वचूड़ामणि की उपाधि से विभूषित तथा **केल्लंगेरे**, **बंकापुर** तथा **कोप्पण** को जैन-केन्द्रों के रूप में विकसित करने वाले सेनापति **हुल्ल**, मूलसंघ देशीगण के **बालचन्द्र मुनि**, नरसिंहदेव के धर्मगुरु–बलात्कारगण के **माघनन्दि सिद्धान्तदेव**, **कुमुदेन्दु योगी**, जैसी विभूतियाँ इसी समय में हुई। **अभिनवसार- चतुष्टय** (सिद्धान्तसार, श्रावकाचारसार, पदार्थसार तथा शास्त्रसार) जैसे महनीय ग्रन्थों की रचना भी इसी काल में की गई।

---

५०. Medieval Jainism P. 63-73.

दक्षिण का चालुक्य-वंश

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के निर्माण तथा जैन-साहित्य के विकास में दक्षिण के शिलालेखों तथा पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों के अनुसार चालुक्यों के योगदानों को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। **डॉ. भाण्डारकर** के अनुसार "**वादामी** के चालुक्यों के शासनकाल में जैनधर्म को प्रमुखता मिली क्योंकि चालुक्यों के किसी भी अभिलेख या प्रशस्ति में बौद्धधर्म को संरक्षण देने की सूचना नहीं मिलती। इसके विपरीत जैनधर्म के ऐसे अनेक उल्लेख उनमें मिलते हैं, जिनसे चालुक्यों द्वारा जैनधर्म को संरक्षण दिये जाने की सूचनाएँ मिलती हैं [५१] "।

इस वंश के राजाओं ने दर्जनों जैन-मन्दिरों के निर्माण के लिये भूमिदान एवं धन-दान तो दिये ही, स्वयं भी अनेक विशाल जैन-मन्दिरों के निर्माण भी कराये।

राजा सत्याश्रय की पूर्ण सहायता से जैनकवि **रविकीर्ति** द्वारा निर्मापित जिनेन्द्र का पाषाण-मन्दिर तथा उसके प्रवेशद्वार पर उत्कीर्णित शिलालेख सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ। यह शिलालेख **ऐहोले-शिलालेख** [५२] के नाम से जाना जाता है। उसे उक्त कवि रविकीर्ति ने लिखा था तथा अपनी कवित्व-शक्ति की तुलना **कालिदास एवं भारवि** से की थी। इससे रविकीर्ति की कवित्व-शक्ति का तो पता चलता ही है, साथ ही कालिदास एवं भारवि में से पूर्ववर्त्ती कौन था, इतिहास के इस विकट विभ्रम को सदा-सदा के लिये मिटाने वाला भी सिद्ध हुआ।

चालुक्यवंश सम्बन्धी उपलब्ध शिलालेखों के अनुसार मूलवंश देवगण के **उदयदेव-पण्डित** (अपरनाम निरवद्यपण्डित) **विजयदेव-पण्डित**, कन्नड़ कवि **पम्प** (९४१ ई.), कवि-चक्रवर्ती **रन्न**, **विमलचन्द्र-पण्डित देव**, द्रविड़ संघ-पुस्तक-गच्छ के **त्रैकालमुनि-भट्टारक**, विदुषीरत्न **शान्तियव्वे**, महाकवि **वादिराज**, **दयापाल**, **पुष्पषेण सिद्धान्तदेव** जैसे आचार्य विद्वान्-लेखक इसी राजवंश में संरक्षण प्राप्त कर जैन साहित्य और संस्कृति की सेवा एवं उसे विकसित कर सके। जिस प्रकार प्राच्य भारतीय इतिहास के निर्माण में **बडली** (अजमेर) शिलालेख, प्रियदर्शी सम्राट **अशोक** एवं कलिंग सम्राट **खारवेल** के शिलालेखों का योगदान रहा, उसी प्रकार दक्षिण-भारत के मध्यकालीन इतिहास के निर्माण में गंग, राष्ट्रकूट, होयसल, पल्लव, एवं चालुक्य वंश से सम्बन्धित शिलालेखों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। इन शिलालेखों के बिना दक्षिण के समग्र इतिहास–लेखन का कार्य सम्भव न था।

घट्याला (जोधपुर) का कक्कुक-शिलालेख

९ वीं, १० वीं सदी के **कक्कुक शिलालेख** में, जो कि जोधपुर के पास **घट्याला** ग्राम में एक स्तम्भ पर टंकित है, उसमें **प्रतिहार-वंश** की उत्पत्ति एवं उसके राजवंश की

---

५१. The Early History of the Deccan P.75.

५२. जैन शिलालेख संग्रह, (माणिक. दि. जैन ग्रंथमाला, बम्बई) प्रथम भाग, लेखांक १०८

नामावली प्रस्तुत की गई है। इस शिलालेख में **कक्कुक** द्वारा एक जैनमन्दिर के निर्माण तथा प्रजाजनों की सुविधा के लिए चहारदिवारी से घिरे हुए सुरक्षित एक **हाट-बाजार** (Market) के बनाए जाने की भी चर्चा की गई है।

जैनों के सर्वधर्म-समन्वयकारी तथा सार्वजनिक कल्याणकारी कार्यों के इतिहास की जानकारी की दृष्टि से उक्त शिलालेख का विशेष महत्व है।

वर्तमानकालीन **मार्केटों** (हाट-बाजारों) की परम्परा भारत में सम्भवतः **राजा कक्कुक** के समय से प्रारम्भ हुई। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी होगी क्योंकि वह समय विदेशी-आक्रमणों का था, उसके कारण राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक अव्यवस्था, आर्थिक दुरावस्था, सर्वत्र असुरक्षा एवं भय के व्याप्त होने के कारण नागरिकों को उससे उबारने तथा दैनिक आवश्यकताओं की सामग्री एवं खाद्यान्नादि की पूर्ति हेतु एक द्वार वाले एक सुरक्षित चतुर्दिक घेरेबन्दी में सुविधा-सम्पन्न **हाट-बाजार** बनाने की परम्परा का आविष्कार किया गया। कक्कुक-शिलालेख के अनुसार उस (राजा कक्कुक) ने **रोहिंसकूप** (घट्याला, जोधपुर, राजस्थान) में महाजनों, ब्राह्मणों, सेना तथा व्यापारियों के लिए एक विशाल हाट-बाजार बनवाकर अपनी कीर्ति का विस्तार किया था–

यथा–

सिरिकक्कुएण हट्टं महाजणं-विप्प-पयइ-वणि-बहुलं ।
रोहिंसकूवगामे णिवेसियं कित्तिविद्धीए।।२०।।

निष्कर्ष यह कि शिलालेखों के रूप में उपलब्ध इन शिलालेखीय पाण्डुलिपियों ने यदि भारतीय इतिहास के साथ-साथ जैन इतिहास को भी सुरक्षित न रखा होता, तो आज श्रमण-संस्कृति का इतिहास ही नहीं बल्कि भारतीय इतिहास भी सम्भवतः अन्धकार-युग में विचरण करता रहता। [५३]

जैन पाण्डुलिपियाँ-ताड़पत्रीय एवं कर्गलीय-प्रशस्तियों में उपलब्ध कुछ रोचक ऐतिहासिक सामग्री

जैन पाण्डुलिपियाँ अपनी अनेक मौलिक विशेषताओं के कारण देश-विदेश के प्राच्य विद्याविदों के लिए आश्चर्य एवं आकर्षण की विषय रही हैं क्योंकि उनमें जीवन एवं जगत के प्रायः सभी पक्षों के संक्षिप्त या विस्तृत चित्रण उपलब्ध होते हैं।

---

५३. ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण होने पर भी उनका बहुआयामी निष्पक्ष विस्तृत अध्ययन न हो पाने के कारण सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं पुरातत्वेता **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने विह्वल मन से ठीक ही लिखा था–"इतिहास के स्रष्टा तो चले गये, पर स्रष्ट–इतिहास को एकत्र करने वाले भी उत्पन्न नहीं हो रहे। अपनी ही मिट्टी में अपने बहुमूल्य रत्न दबे पड़े हैं। उनको हमने अपने पैरों से रौंदा है। इनको चुनने के लिये समुद्र के उस पार से **टॉड, फार्वीस, ग्रॉस, कनिंघम,** आदि आये। वे इतिहास-गवेषणा के लिये नियुक्त नहीं किये गये थे, पर वे अपने राजकीय–कार्य के बाद अवकाश के समय यहॉ की प्रेम–गाथाऍ तथा शौर्य–कथाओं से प्रभावित हुए। इनका स्वर उनके कानों में पड़ा। उसी पुकार ने उनके हृदय में शोधक–बुद्धि उत्पन्न कर दी।'

(डॉ.अग्रवाल के एक भाषण का अंश)

जैसी कि प्राचीन परम्परा मिलती है, आध्यात्मिक सन्त, आचार्य-लेखकगण लोक-ख्याति से प्रायः दूर ही रहते रहे। यही कारण है कि उनके लोकार्पित विशिष्ट ग्रन्थों में उनके आत्मवृत्तों के उल्लिखित न होने के कारण उनके जीवनवृत्त प्रायः अज्ञात अथवा विवादास्पद जैसे ही बने रहे। इस कोटि में आचार्य **गुणधर**, **पुष्पदन्त**, **भूतबलि** एवं **कुन्दकुन्द** ही नहीं, आचार्य **शिवार्य**, **कार्तिकेय** और यहाँ तक कि महाकवि **भास**, **शूद्रक** एवं **कालिदास** प्रभृति की भी दीर्घकाल तक यही स्थिति बनी रही। इन सभी के निर्विवाद प्रामाणिक जीवनवृत्तों से हम सदा-सदा के लिये अनभिज्ञ ही रह जाते, यदि शोध-प्रज्ञों ने उनकी खोज के लिये आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग न किये होते और प्राच्य-विद्या–जगत् को प्राच्य-शिलालेखों एवं पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों तथा अन्य कसौटियों के माध्यम से उनके इतिवृत्तों की जानकारी न दी होती। भले ही वे अधिकांशतः सर्वसम्मत न बन सके।

मध्यकालीन आचार्य-लेखकों ने इतिहास के उक्त उपेक्षित तथ्य का सम्भवतः गम्भीरता से अनुभव किया था। यही कारण है कि उन्होंने अपने ग्रन्थों के आदि एवं अन्त में प्रशस्तियाँ लिखकर उनमें **आत्मपरिचय, ग्रन्थ-लेखन-काल** तथा **ग्रन्थ-लेखन-स्थल** आदि के उल्लेख किये हैं। ग्रन्थान्त में **प्रतिलिपिकारों** ने भी अपनी पुष्पिकाओं में ग्रन्थ का प्रतिलिपिकाल और प्रतिलिपि-स्थलों के उल्लेख किये हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रशस्तियों में लेखकों तथा प्रतिलिपिकारों ने समकालीन राजाओं, नगर-श्रेष्ठियों आश्रयदाताओं तथा भट्टारक-गुरु-परम्परा के साथ-साथ पूर्ववर्ती साहित्य एवं साहित्यकारों के उल्लेख भी किये हैं, जो विविध पक्षीय इतिहास की विश्रृंखलित कड़ियों को जोड़ने में विशेष सहायक हैं। उदाहरणार्थ कुछ तथ्य यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

(१) एक शिलालेखीय प्रशस्ति के अनुसार **गंगराज अविनीत** ने (वि. सं. ५२३) आचार्य **देवनन्दि-पूज्यपाद** (वि.सं. ५२१–५८१) को पूर्ण सम्मान ही नहीं दिया, बल्कि उनके सान्निध्य में अपने **राजकुमार दुर्विनीत** के लिए शिक्षा भी प्रदान कराई।

गुरु की प्रेरणा से इस राजकुमार दुर्विनीत ने भी **तलकाड** (कर्नाटक) में सर्व-सुविधा-सम्पन्न एक **जैन-विद्यापीठ** की स्थापना की, जिसमें आचार्य, मुनि आदि ने बैठकर जैन-दर्शन, साहित्य एवं आचारादि के साथ-साथ छन्द, व्याकरण, आयुर्वेद, राजनीति एवं लक्षण-ग्रन्थों की रचनाएँ की थीं। इसमें लेखन -कला की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी [५४]।

(२) एक अन्य प्रशस्ति के अनुसार राष्ट्रकूट-वंशी **सम्राट अमोघवर्ष** (९वीं सदी), जिसे कि जैन-समाज अपना वीर-विक्रमादित्य मानता है, और **अरबी इतिहासकार सुलेमान** ने भी जिसे अपने समय के विश्व के

५४.. अतीत के पृष्ठों से (लेखक डॉ.राजाराम जैन) पृ. ४, ६.

प्रधान ४ सम्राटों में से उसे अग्रगण्य माना था [५५], उसने धवला टीकाकार **वीरसेन स्वामी** के पट्टशिष्य **आचार्य जिनसेन** को अपना गुरु माना था। उसने जिनवाणी के उद्धार तथा लेखन के लिए **वाटनगर** में एक **जैन-विद्यापीठ** की स्थापना की थी, जिसके अधिष्ठाता स्वयं आचार्य जिनसेन थे [५६]। जिनसेन ने स्वयं तो उच्च श्रेणी के ग्रन्थ लिखे ही, साथ ही वीरसेन स्वामी के स्वर्गारोहण के बाद उनके अधूरे टीका-कार्यों को भी पूर्ण किया था।

जिनसेन के पट्टशिष्य आचार्य **गुणभद्र** ने भी जिनसेन के स्वर्गवास के बाद उनके अधूरे महापुराण [५७] को उन्हीं की भाषा-शैली में पूर्णकर उसके पूरक के रूप में उत्तरपुराण [५८] की रचना की थी।

प्रशस्तियों के अनुसार इन आचार्यों के अतिरिक्त भी उक्त विद्यापीठ में बैठकर आयुर्वेदशास्त्रज्ञ आचार्य **उग्रादित्य**, गणितज्ञ **महावीराचार्य** एवं वैयाकरण **शाकटायन-पाल्यकीर्ति** प्रभृति आचार्यों ने भी गम्भीर साहित्य-साधना की थी।

उक्त सम्राट अमोघवर्ष ने कुल मिलाकर लगभग ६३ वर्षों तक राज्य किया और अन्त में अपने पिता के समान ही राज्यपाट त्याग कर वह उक्त आचार्यों के सान्निध्य में रहकर स्वयं भी उच्चकोटि का कवि-लेखक बन गया था और उसने स्वयं भी "**कविराजमार्ग**", (लक्षण-ग्रन्थ) एवं "**प्रश्नोत्तररत्नमालिका**" की रचना की, जो जैन-साहित्य की विशिष्ट कृतियों के रूप में प्रसिद्ध हुई।

कविराजमार्ग यद्यपि लक्षण-शास्त्र का ग्रन्थ है किन्तु उसके प्रारम्भ में उसका मातृभूमि-प्रेम देखिये, कितना मार्मिक बन पड़ा है। उसके मूल कन्नड़ पद्यों का अंग्रेजी

---

५५. अतीत के पृष्ठों से (लेखक डॉ.राजाराम जैन) पृ. ४, ६.

५६. आचार्य **जिनसेन** के साधना-पूर्ण विराट-व्यक्तित्व को सम्राट अमोघवर्ष कितना आदर देता था, उसके विषय में आचार्य **गुणभद्र** ने अपनी एक प्रशस्ति में लिखा है–

यस्य प्रांशु नखांशु जाल विसरद्धारान्तराविर्भवत्
पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्तास्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलम्
स श्रीमान्जिनसेन पूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम्।।

अर्थात् श्री जिनसेन स्वामी के दैदीप्यमान नखों के किरण-समूह उज्ज्वल–धारा के समान कान्ति फैलाते थे और उनके बीच उनके चरण-युगल कमल-पुष्प जैसे प्रतीत होते थे। उनके उन चरण-कमलों की रज से जब राजा **अमोघवर्ष के राजमुकुट** में लगे हुए नवीन रत्नों की कान्ति पीली पड़ जाती थी, तब वह अपने आपको ऐसा स्मरण करता था कि मैं आज अत्यंत पवित्र हो गया हूँ, ऐसे पूजनीय भगवान् जिनसेनाचार्य की चरण-रज विश्व के लिये मंगलकारी सिद्ध हो। (उत्तरपुराण अन्त्य प्रशस्ति पद्य सं. ६)

५७.–५८.महापुराण (अपरनाम त्रिषष्ठिशलाकामहापुरुषचरित)–दो खण्डों में विभक्त है–**आदिपुराण** एवं **उत्तरपुराण**। आदिपुराण में भ. ऋषभदेव का विस्तृत जीवन-चरित दर्णित है और उत्तरपुराण में अवशिष्ट २३ तीर्थंकरों तथा अन्य शलाका-महापुरुषों का जीवन-चरित वर्णित है।

आदिपुराण में कुल १२ सहस्र श्लोक तथा ४७ पर्व (अथवा अध्याय) हैं। इनमें से ४२ पर्व सम्पूर्ण तथा ४३वें पर्व के ३ श्लोक जिनसेन कृत तथा बाकी के पर्वों के १६२० श्लोक उनके शिष्य आचार्य **गुणभद्र** कृत हैं।

एवं हिन्दी अनुवाद उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत है–

In all the circle of the Earth
No fairer land you will find.
Than that where rich sweet Kannada
voices the people's mind.

अर्थात् समस्त भूमण्डल में, ऐसा सुन्दरतर भूखण्ड आपको कहीं भी दिखाई नहीं देगा, जहाँ लोक-मानस द्वारा सहज स्वाभाविक रूप में निःसृत समृद्ध कन्नड़ के मधुर-संगीत के समकक्ष, हृदयावर्जक संगीत सुनाई देता हो। (१)

The people of that land are skilled
To speak in rhythmic tone.
And quick to grasp a poet's thought
So kindered to their own.

उस कर्नाटक-भूमि के मूल निवासी जन, स्वर एवं लयबद्ध संगीतात्मक ध्वनियों में ऐसे जन्म-जात प्रतिभा-सम्पन्न होते हैं, कि वे किसी भी कवि की अन्तरंग भाव-भूमि को तत्काल ही आत्मसात् कर लेने में सक्षम हैं और स्वयं भी वे बड़े संवेदनशील रहते हैं। (२)

Not students only, but the folk
untutored in the schools
By instinct use and understand
The strict poetic rules. (1/36-38)

अर्थात् उस कर्नाटक के केवल विद्यार्थीगण ही नहीं, अपितु सर्वथा-अशिक्षित ग्राम्यजन भी, जिन्होंने कि विद्यालयों में कभी भी विधिवत् शिक्षा ग्रहण नहीं की, वे भी, अपनी सहज स्वाभाविक प्रतिभा के बल पर काव्य-विधा के परम्परागत नियमों को समझते हैं, तथा अपने लोक-संगीत में स्वयं उनका प्रयोग भी कड़ाई के साथ किया करते हैं। (३)

प्रश्नोत्तररत्नमालिका की पाण्डुलिपि दुर्भाग्य से भारत में लुप्त हो चुकी थी। संयोग से सन् १९७१–१९७२ में उसकी **तिब्बती-लिपि** एवं **तिब्बती-अनुवाद** के साथ एक पाण्डुलिपि **तिब्बत** के एक ग्रन्थागार में उपलब्ध हुई थी, जिसका आचार्य श्री **विद्यानन्दजी** के प्रयत्नों से हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। उदाहरणार्थ उसका एक मार्मिक पद्य यहाँ उद्धृत है–

" किं शोच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम् ।
तनुरवित्तस्य तथा प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम् ।। २५ ।।

अर्थात् –

प्रश्न – वैभव-सम्पत्ति के होते हुए भी शोचनीय विषय क्या है ?

उत्तर – कृपणता अर्थात् वैभव-सम्पत्ति का न तो स्वयं उपभोग करना, और न ही उसे सुपात्रों को दान में देना।

प्रश्न – वैभव के होने पर प्रशंसनीय विषय क्या है ?

उत्तर – उदारता, जिससे स्व-पर को सुख-सन्तोष मिलता है।

प्रश्न – *धन-विहीन पुरुष की प्रशंसनीय बात कौन-सी मानी जाने योग्य है?*

उत्तर – उदारता, मानवता एवं ऋजुता।

प्रश्न – शक्ति-सम्पन्न पुरुषों का सराहनीय गुण कौन-सा है ?

उत्तर – सहिष्णुता, क्षमाशीलता एवं न्यायप्रियता।

अमोघवर्ष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आधार पर सुप्रसिद्ध इतिहासकार **डॉ. रा.गो.भण्डारकर** ने लिखा है कि–" समस्त राष्ट्रकूट राजाओं में **सम्राट अमोघवर्ष** जैनधर्म का महान् संरक्षक था और यह बात सत्य प्रतीत होती है कि उसने स्वयं जैनधर्म धारण किया था [५९]। "

(३) अपभ्रंश के **त्रिषष्ठिशलाकामहापुराणपुरुषचरित** (अपरनाम महापुराण) की आद्य-प्रशस्ति से विदित होता है कि महामंत्री **भरत** एवं **नन्न** ने महाकवि **पुष्पदन्त** को अनुनय-विनय कर अपने राजमहल में आश्रय देकर अपभ्रंश के उच्चकोटि के साहित्य के लिखने की प्रेरणा दी थी। पुष्पदन्त ने स्वयं कहा है कि " प्राकृत-कवि-काव्य रसावलुब्ध **भरत** एवं **नन्न** परम राष्ट्र-भक्त एवं प्रजावत्सल हैं। राष्ट्र की रक्षा के लिए आयुधास्त्र ढोते-ढोते उनके कन्धे छिल गए हैं। वे साहित्यरसिक ऐसे हैं कि उनका राजमहल साहित्यकारों, संगीतकारों एवं कलाकारों के लिए सुविधा-सम्पन्न उच्च विद्या-केन्द्र बन गया है, जहाँ रहकर वे विविध प्रकार के साहित्य एवं संगीतशास्त्र का प्रणयन एवं प्रयोग करते रहते हैं [६०]।

(४) गुजरात के आचार्य **सर्वानन्दसूरि** (१३ वीं–१४ वीं सदी) द्वारा विरचित एक सुन्दर रचना मिली है, जिसका नाम है **जगडूचरित**।

इस रचना का कथानायक **भद्रेश्वर** (गुजरात) निवासी **जगडू शाह** एक दिन नगर के बाहर घूम रहा था। उसी समय उसकी दृष्टि एक बकरी के गले में बँधे हुए पत्थर पर पड़ी। उसकी पारखी दृष्टि ने समझ लिया कि यह कोई मूल्यवान् पत्थर है। अतः उसने बकरी के मालिक को मुँहमाँगा मूल्य देकर उसे खरीद लिया। बाद में उसे साफ-सुथरा कर बाजार में बेचा, तो उसे एक लाख स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हुईं क्योंकि वह एक बड़े आकार का निर्दोष अखण्ड **असली हीरा** था।

जगडू इस व्यापार से इतना उत्साहित हुआ कि धीरे-धीरे उसने अपना यह व्यापार आगे बढ़ाया। विदेशों से भी **आयात-निर्यात** का व्यापार प्रारम्भ किया और शीघ्र ही अपरिमित चल-अचल सम्पत्ति का स्वामी बन गया।

उक्त लेखक के अनुसार श्री-समृद्धि की सार्थकता तभी तक है, जब तक कि उसका स्वामी विनम्र, संवेदनशील, उदारठहृदय, निरभिमानी, दीन-अनाथों के प्रति

---

५९. कर्नाटक के जैन कवि पृ. ३२

६०. तिसट्ठिमहापुराणपुरिसगुणालंकारु – प्रशस्ति

करुणा-भावना से ओतप्रोत तथा सर्वधर्म-समन्वय की वृत्ति वाला हो, वह सार्वजनिक सेवाओं में सदा आगे रहने वाला हो और जो पंच-परमेष्ठियों की उपासना में निरंतर तत्पर रहता हो।

जगडू में ये सभी गुण विद्यमान थे। उसने तीर्थयात्राओं के लिए विशाल संघ निकाले। अनेक जिन-मन्दिरों पर स्वर्णकलश चढ़ाए, अगणित ध्वजारोहण-समारोह किये, **वर्धमानपुर** (बाढवाण, गुजरात) में विशाल कलापूर्ण चौबीसी-मन्दिर का निर्माण कराया और उसमें **मम्माणिक-पाषाण** की महावीर स्वामी की मूर्ति के साथ अन्य अनेक मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कराई, भद्रेश्वर में ही उसने अपने मुस्लिम-भाईयों के लिये एक **विशाल मस्जिद** तथा ग्रामों-ग्रामों एवं नगरों-नगरों की जल सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने के लिये अगणित कुएँ, बावड़ियाँ, सरोवरों एवं बाँधों के निर्माण कराये।

एक दिन जगडू के गुरु ने भविष्यवाणी की **वि. सं. १३१२** के तीन वर्षों के बाद गुजरात में तीन वर्षों का **भयंकर अकाल** पड़ेगा। इससे चिन्तित होकर जगडू ने अकाल पीड़ितों के निमित्त सैकड़ों अन्नागार बनवाकर उनमें अपरिमित अनाज का संग्रह करना प्रारंभ कर दिया।

वि.सं. १३१३ में वास्तव में सारे गुजरात में वृष्टि का अभाव हो गया। इस कारण अकाल पड़ गया। स्थिति इतनी दयनीय हो गई कि **एक दिरम (अर्थात् ४ आने) में चनों के १३-१३ दाने बिकने लगे।**

अनहिलवाडा के राजा **वीसलदेव** अपने राज्य में भुखमरी देखकर द्रवित हो उठे। जब उन्हें पता चला कि जगडू ने अपने अन्नागारों में अपरिमित अनाजों का संग्रह किया है, तो खरीदने के विचार से उन्होंने जगडू को दरबार में बुलवाकर उससे अपना सारा अनाज राज्य को बेचने का अनुरोध किया।

जगडू ने राजा से अत्यंत विनम्रता पूर्वक निवेदन किया कि महाराज –" मेरे पास अपना अन्न तो कुछ भी नहीं है। जो कुछ है भी, तो वह सब तो प्रजाजनों का ही (अन्न) है। यदि आपको विश्वास न हो, तो चलकर अन्न-भण्डार के दरवाजे पर लिखा हुआ मेरा **ताम्र-पट्ट** स्वयं पढ़ लें।

वीसलदेव आश्चर्य-चकित होकर अन्न-भण्डार के पास आया और उस पर लिखे हुए पट्ट को पढ़ा। उस पर स्पष्ट लिखा था–

जगडू कल्प्यामास रंकार्थं कणानमून्।

अर्थात् जगडू ने यह अन्न अकाल-पीड़ितों को बाँटने के संकल्प से ही एकत्रित किया है। तत्पश्चात् उसने अपने ७०० अन्न-भण्डार **वीसलदेव** को भेंट-स्वरूप अर्पित कर दिये। उन अन्न-भण्डारों में ३ करोड़ ६६ लाख ६० हजार मन से भी अधिक अनाज संचित किया गया था। इसके अतिरिक्त भी, जगडू ने सिन्धु देश के राजा **हमीर** को १२ हजार मुडे [६१], **मुइजुदीन** को २१ हजार मुड़े, काशी के **राजा प्रतापसिंह** को ३२ हजार **मुड़े** तथा

६१. एक मुड़े के बराबर ४० मन अनाज होता है।

चक्री (चक्रवर्ती) पदधारी **स्कन्धिल** के राजा को १२ हजार मुड़े, अन्न भेंट-स्वरूप प्रदान किये। यही नहीं, जगडू ने सुदूरवर्त्ती इलाकों में ११२ **दान-शालाएँ** खुलवाईं, करोड़ों **लज्जापिण्ड** बाँटे। (दुष्काल के समय प्रतिष्ठित लोग लज्जावश किसी के सम्मुख जाकर भिक्षावृत्ति नहीं कर सकते थे, अतः उनकी और उनकी बहू-बेटियों की प्रतिष्ठा को बचाने के लिये बूँदी के बड़े-बड़े लड्डुओं में स्वर्ण-मुद्राएँ या स्वर्ण की जंजीरें या हीरे-मोती भरकर उन्हें लज्जापिण्ड कहकर उनके घर-घर जाकर उसने स्वयं ही वितरित किये।)

इस प्रकार जगडू ने अपनी अर्जित सम्पत्ति में से अकाल पीड़ितों एवं दुखीजनों के लिये कुल ६६६००० मुडे अर्थात् ३ करोड़ ६६ लाख ६० हजार मन से अधिक अनाज तथा १८ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ **लज्जापिण्डों** के रूप में वितरित कर आत्मसुख का अनुभव किया।

जगडूचरित के अनुसार जगडू की लोकप्रियता का पता इसीसे चलता है कि उसकी मृत्यु का समाचार सुनते ही **गुजरात** का राजा **अर्जुनदेव** फूट-फूटकर रोने लगा, **सिन्धु देश** के राजा ने दो दिनों तक भोजन नहीं किया, **दिल्ली के सुलतान** ने शोक में अपना ताज उतार कर फेंक दिया और प्रजाजन तो बरसों तक उसका गुणगान करते-करते बिलखते रहे और कहते रहे–" आज के राजा **बलि**, राजा **शिवि**, राजा **जीमूतवाहन**, राजा **विक्रम** और **राजा** भोज हमारे बीच से सदा-सदा के लिए अन्तर्धान हो गये [६२]।

(५) १३ वीं सदी के **हरयाणा**–निवासी अपभ्रंश महाकवि **विबुध श्रीधर** ने अपने **पासणाहचरिउ-महाकाव्य** की प्रशस्ति में **दिल्ली** का आँखों देखा वर्णन किया है। उसमें उनके एक वाक्य–" **जहिं गयण-मंडलालग्गु सालु** " ने इतिहास की एक जटिल गुत्थी को सुलझा दिया। इतिहासकारों को यह पता नहीं लग रहा था कि दिल्ली के **तोमरवंशी राजा अनंगपाल (१२वीं सदी का उत्तरार्ध)** ने अपने दुर्जेय शत्रु **राव हम्मीर** पर विजय प्राप्त कर, उसकी स्मृति में **ढिल्ली (दिल्ली)** में जो एक विशाल कलापूर्ण **कीर्तिस्तम्भ** का निर्माण कराया था और जिसे विबुध श्रीधर ने "गयणमंडलालग्गु सालु" कहा था, वह आखिर कहाँ चला गया ? उसकी अवस्थिति (Location) का पता नहीं लग रहा था। हुआ यह था कि **कुतुबुद्दीन ऐबक** (१३वीं सदी) ने क्रूरतापूर्वक उस कीर्तिस्तम्भ को ध्वस्त कर दिया था।

इसी कुतुबुद्दीन ऐबक ने विबुध श्रीधर के आश्रयदाता **महासार्थवाह नट्टल साहू** द्वारा कीर्तिस्तम्भ के समीप में निर्मित विशाल आदिनाथ-मन्दिर [६३] तथा **मानस्तम्भ** को भी ध्वस्त कर उनकी अधिकांश सामग्री कुतुबमीनार के निर्माण में लगवा दी थी, जिसके साक्ष्य सन् १९८७ में उस समय मिले, जब विद्युत्पात के कारण कुतुबमीनार का एक अंश ढह गया था और उसमें से कुछ जैन-मूर्तियाँ तथा मन्दिर के स्तम्भ आदि निकल

६२. "नवनीत" (बम्बई) फरवरी १९५५ के लेख के आधार पर साभार

६३. विशेष के लिए देखिए भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित विबुध श्रीधरकृत (तथा प्रो. डॉ. राजाराम जैन द्वारा सम्पादित) **वड्ढमाणचरिउ** की भूमिका

पड़े थे। आधुनिक इतिहासकार **अनंगपाल तोमर** के इस कीर्तिस्तम्भ से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटना से प्रायः अनभिज्ञ जैसे हैं।

(६) **महाकवि रइधू** ने अपभ्रंश, प्राकृत एवं हिन्दी के लगभग तीस-ग्रन्थों की रचना की है। उनकी आदि एवं अन्त की प्रशस्तियाँ ऐतिहासिक महत्व की हैं। उन्होंने **ग्वालियर-शाखा के तोमरवंशी** ७ राजाओं का परिचय तथा उनके बहुआयामी कार्य-कलापों का उल्लेख कर आधुनिक इतिहासकारों द्वारा विस्मृत तथा उपेक्षित उक्त गौरवशाली राजवंश के महत्व को मुखर किया है। रइधू के समकालीन **गोपाचल (वर्तमान ग्वालियर)** के तोमरवंशी राजा **डूँगरसिंह** तथा उनके पुत्र राजा **कीर्तिसिंह** वीर पराक्रमी नरेश थे। उन्होंने गोपाचल के उत्तर में **सैयदवंश**, दक्षिण के **माँडों के सुल्तान**, जौनपुर के **शर्कियों** एवं **दिलावर खाँ गौरी** तथा **हुशंगशाह गोरी** के छक्के छुड़ाकर गोपाचल को निरापद बनाया था [६४]।

राजा डूँगरसिंह तोमर ने अपने को अजेय समझने वाले सुल्तान हुशंगशाह के हीरे-मोती एवं माणिक्यों का अमूल्य कोष भी छीन लिया था। यहाँ तक कि उसके पास सुरक्षित जगप्रसिद्ध **"कोहिनूर"** हीरा (जो कि बाद में महारानी **विक्टोरिया** के राजमुकुट में जड़ा गया), उसे भी राजा डूँगरसिंह ने उससे छीन कर एक कीर्तिमान स्थापित किया था। दुर्भाग्य से आधुनिक इतिहास-ग्रन्थों में इस नरेश की चर्चा भी नहीं मिलती [६५]।

(७) **चौहान वंश** केवल दिल्ली तक ही सीमित न था, बल्कि उसके कुछ वंशजों ने **चन्द्रवाडपत्तन** (वर्तमान चंदवार, फीरोजाबाद, आगरा) पर भी शासन किया था। यह चौहान-परम्परा, राजा **भरतपाल** से प्रारम्भ होती है तथा उसकी नौ पीढ़ियों में राजा **रामचन्द्र** तथा उसका पुत्र राजा **रुद्रप्रतापसिंह चौहान** (वि.सि. १४६८–१५१०) हुआ। महाकवि रइधू की ग्रन्थ-प्रशस्तियों के आधार पर इन चौहान-नरेशों का इतिहास तैयार किया जा सकता है। आधुनिक इतिहासकारों ने चन्द्रवाडपत्तन जनपद के इन चौहानवंशी नरेशों को विस्मृत कर दिया है [६६]।

(८) रइधू-साहित्य की प्रशस्तियों के अनुसार १५वीं सदी में **ग्वालियर-दुर्ग** में जो अगणित जैन-मूर्तियों का निर्माण हुआ, वह महाकवि रइधू की प्रेरणा से उनके भक्त **राजा डूँगरसिंह** एवं उनके पुत्र **राजा कीर्तिसिंह** ने निर्मित कराई थीं। गोपाचल राज्य के राज्य-कोष की ओर से वहाँ लगभग ३३ वर्षों तक लगातार जैन-मूर्तियों का निर्माण-कार्य चलता रहा था। इतनी अधिक जैन-मूर्तियों का निर्माण-कार्य देखकर रइधू को स्वयं ही उन्हें अगणित एवं असंख्य बतलाते हुए " गणण को सक्कई "(उनकी गणना कौन कर सकता है ?) कहना पड़ा था।

६४–६५. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन. लेखक–प्रो.डॉ.राजाराम जैन (वैशाली, बिहार –१९७४) प्रथम सन्धि.

६६. वही.

(९) ग्वालियर-दुर्ग में ही ८० फीट ऊँची कायोत्सर्ग-मुद्रा में एक पहाड़ी पर उकेरी हुई **आदिनाथ** की मूर्ति है, जिसका निर्माता राजा डूँगरसिंह का प्रधान-मन्त्री **कमलसिंह संघवी** (अथवा सिंघई) था तथा जिसका प्रतिष्ठा-कार्य महाकवि रइधू ने स्वयं किया था। उस पर अंकित मूर्ति-लेख के अध्ययन में सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद् **डॉ. राजेन्द्रलाल मित्रा** ने अनेक भ्रमों को उत्पन्न किया है। किन्तु महाकवि रइधू कृत प्राचीन पाण्डुलिपि **''सम्मत्तगुणणिहाणकव्व''** की आद्य-प्रशस्ति के आधार पर उन भ्रमों का भली-भाँति संशोधन किया जा सकता है।

(१०) भारतीय इतिहास का मध्यकाल विदेशियों के आक्रमणों का दुखद-काल था। इस समय की विधि-व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। उस समय भारतीयता, भारतीय-प्राच्य-विद्या के गौरव-ग्रन्थों तथा भारतीय-गौरव की पुरातात्विक वास्तुओं की सुरक्षा तथा प्रतिष्ठा को बचा पाना भी कभी-कभी कठिन लगता था। उस समय का जनजीवन अस्त-व्यस्त होने के कारण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं भारतीय दर्शन की ऐतिहासिक मूल्य की अगणित प्राचीन महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियाँ नष्ट-भ्रष्ट, लुप्त, विलुप्त एवं अनुपलब्ध हो गयीं। फिर भी अवशिष्ट जैन-पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों में उपलब्ध सन्दर्भों के आधार पर संस्कृत एवं प्राकृत के विस्मृत अनेक साहित्यकारों एवं उनके साहित्य की खोज अथवा जानकारी प्राप्त की जा सकती है। प्रशस्तियों में उपलब्ध उनकी सूची बहुत विस्तृत है। अतः उसे समग्र रूप में प्रस्तुत कर पाना तो यहाँ सम्भव नहीं, किन्तु उदाहरणार्थ कुछ साहित्यकारों एवं उनके ग्रन्थों के सन्दर्भ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहें हैं :–

	कवि या लेखक का नाम एवं काल	**सन्दर्भित रचनाएँ**	**विशेष**
१.	आचार्य देवनन्दि (पूज्यपाद) (लगभग ५वीं सदी, पं. युधिष्ठिर मीमाँसक के अनुसार) कृत –	महर्षि पाणिनि के व्याकरण-सूत्रों पर **''शब्दावतार''-न्यास-** नामक टीका ग्रन्थ–	वर्तमान में वह ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। मुग्धबोध-व्याकरण के प्रणेता **बोपदेव** ने इन्हें (अर्थात् आचार्य देवनन्दि को) पाणिनि सहित भारत के ८ प्राचीन प्रमुख वैयाकरणों में प्रतिष्ठित स्थान दिया है।
२.	कवि गोविन्द कृत– (७वीं–८वीं सदी)	महाभारत सम्बन्धी किसी प्राकृत–ग्रन्थ की रचना	वर्तमान में अनुपलब्ध
३.	जीवदेव कृत – (६वीं–७वीं सदी)	वीररस-प्रधान किसी प्राकृत-ग्रन्थ की रचना	वर्तमान में अनुपलब्ध
४.	कवि अनुराग कृत– (सम्भवतः ५वीं–६वीं सदी)	शंकर एवं पार्वती से सम्बन्धित कोई श्रृंगार-रस-प्रधान संस्कृत-रचना	वर्तमान में अनुपलब्ध

५.	सुग्रीव ज्योतिषी कृत– (८वीं सदी के आसपास)	१. आयप्रश्न-तिलक २. प्रश्नरत्न ३. आय-सद्भाव ४. स्वप्न-फल ५. सुग्रीव-शकुन	ये सभी रचनाएँ **कोल्हापुर** (महाराष्ट्र) के प्राचीन शास्त्र भण्डार में सुरक्षित कही जाती हैं।
६.	पल्लवकीर्ति कृत (८वीं सदी के आसपास)	इनकी कृतियाँ अज्ञात हैं।	
७.	धर्मसेन (८वीं सदी के आसपास)	इनकी कृतियाँ अज्ञात हैं।	
८.	सर्वनन्दि (८वीं सदी के आसपास)	इनकी कृतियाँ अज्ञात हैं।	
९.	कीर्तिरत्न (८वीं सदी के आसपास)	इनकी कृतियाँ अज्ञात हैं।	
१०.	वीरबन्दक (८वीं सदी के आसपास)	इनकी कृतियाँ अज्ञात हैं।	

आदि आदि,

(११) प्राच्यकालीन प्रशस्तियों के अनुसार श्रमण-परम्परा के संरक्षण एवं विकास में श्रद्धेय **भट्टारकों** के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इनका इतिहास बड़ा ही प्रेरणास्पद एवं रोचक है किन्तु उसके कथा-कथन का यहाँ अवसर नहीं। दक्षिण-भारत में **कसायपाहुड** एवं **षट्खण्डागम** सम्बन्धी तथा अन्य प्रमुख आचार्यों की **ताडपत्रीय पाण्डुलिपियों** और उत्तर-भारत में **कर्गलीय पाण्डुलिपियों** के रूप में हमारी जिनवाणी सुरक्षित रह सकी तथा उनमें नए-नए ग्रन्थों का जो लेखन-कार्य चलता रहा, उसका अधिकांश श्रेय उन महामहिम भट्टारकों को ही है, जिन्होंने दिशा-निर्देशक, उत्साहवर्धक अपने अगणित कार्य-कलापों से समाज को निरन्तर जागरूक बनाए रखने के अथक प्रयत्न किये।

महाकवि रइधू ने पूर्ववर्त्ती एवं समकालीन १३ भट्टारकों के नामोल्लेख एवं उनके कार्यकलापों की संक्षिप्त चर्चा की है, जो सभी **काष्ठासंघ**, **माथुरगच्छ** एवं **पुष्करगण-शाखा** के थे[६७]। ये सभी भट्टारक परम तपस्वी, प्रतिभा-सम्पन्न एवं गम्भीर विद्वान् थे। इन भट्टारकों में से दो के नाम विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। एक तो **भट्टारक यशःकीर्ति** हैं, जिन्होंने **रइधू** को प्रेरित एवं उत्साहित कर उनके कविरूप को जागृत किया, जो आगे चलकर अपभ्रंश-साहित्य के महान् कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए और जिनकी अनेक रचनाओं में से अद्यावधि २४ रचनाएँ उपलब्ध हैं।

भट्टारक यशः कीर्ति ने स्वयं भी **गोपाचल-दुर्ग** के समीपवर्ती **पनियार-मठ** के

६७. विशेष विस्तार के लिये देखिये – रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन प्रथम सन्धि

जिन-मन्दिर में बैठकर स्वयं तो अपभ्रंश में **पाण्डव पुराण**, *(३४ सन्धियाँ)*, **हरिवंशपुराण** (१३ सन्धियाँ), ३ **जिणरत्तिकहा** एवं **रविवयकहा** नाम की रचनाएँ लिखी हीं, उन्होंने अपभ्रंश के महाकवि **स्वयम्भू** कृत **रिट्ठणेमिचरिउ** तथा **पउमचरिउ**, संस्कृत-भाषा का विबुध श्रीधर कृत **भविष्यदत्त-काव्य**, एवं अपभ्रंश-भाषा की (विबुध श्रीधर कृत) **सुकुमालचरिउ** की जीर्ण-शीर्ण, गलित अथवा अर्धनष्ट पाण्डुलिपियों का उद्धार भी किया था। यदि यशःकीर्ति ने उनका उद्धार न किया होता, तो साहित्यिक इतिहास से ये गौरव-ग्रन्थ सदा-सदा के लिए लुप्त ही हो गये होते।

दूसरे भट्टारक हैं, **शुभचन्द**, जो भट्टारक **कमलकीर्ति** के शिष्य थे। कवि रइधू के अनुसार **कमलकीर्ति** ने **सोनागिरि** में एक भट्टारकीय पट्ट की स्थापना की थी और जिस पर उन्होंने भट्टारक शुभचन्द्र को पद-स्थापित किया था [६८]। पट्टाधीश होने के बाद उन्होंने श्रमण-संस्कृति एवं साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

(१३) भारतीय इतिहास के ग्रन्थों में उल्लिखित मध्यकाल के अनेक हिन्दु एवं मुस्लिम शासकों के शासन-काल की तिथियाँ कुछ आनुमानिक एवं कुछ भ्रमात्मक रूप में पाई जाती हैं। मध्यकालीन जैन पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं के आधार पर उन भ्रमों का भलीभाँति संशोधन किया जा सकता है। उनमें से कुछ शासकों के नाम, उनके शासन-केन्द्र एवं उनकी तिथियों की सूचनाएँ निम्न प्रकार उपलब्ध होती हैं [६९] –

राजा का नाम	**(काल,वि.सं. में)**	**शासन-स्थल**	**विशेष**
१.मुहम्मद शाह	१३६६	योगिनीपुर (दिल्ली)	–
२.महमूद शाह	१४६१	,,	इसका मंत्री– हेमराज जैन था।
३.मुबारिक शाह	१४६७	,,	–
४.सुल्तान गयासुदीन	१५३३	,,	
५.फिरोज खान	१५४१–४५	लाडनूँ (राजस्थान) एवं हिसार-फिरोजा (हरियाणा)	
६.बहलोल	१५४२		
७.इब्राहीम शाह	१५७७–८२	कुरुजांगल, फिरोजाबाद एवं सिकन्दराबाद.	
८.हुमायूँ	१५५४	योगिनीपुर (दिल्ली)	
९.आलमशाह	१५८४	कालपी	(बाबरके राज्यकाल में)
१०.बाबर	१५८७	योगिनीपुर, कुरुजांगल	
११.सलीम	१६०७	,,	,,

६८. विशेष विस्तार के लिये देखिये – रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन
प्रथम सन्धि

१२.जहाँगीर	१६७२–७४	बीजवाड़ा, अहमदाबाद	
१३.शाहजहाँ	१६८६–९२	इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)	
१४.मुलकगीर	१७३३	दिल्ली	
१५.आलम	१७०५	चम्पावती	(आधुनिक चुरू, राजस्थान)
१६.नादिरशाह	१७९७		इसने भारत में भयानक कत्लेआम किया था। इसकी सूचना एक ग्रन्थ-प्रशस्ति में उपलब्ध होती है।
१७.राजा वीरम तोमर	१४७६	गोपाचल (ग्वालियर)	
१८.मानसिंह	१५४५–६१	अकबरनगर (राजमहल) बंगाल,	
१६.राव रामचंद्र	१५८१–८३	घट्टयाली नगर एवं चम्पावती.	
२०.राय वीरम राठौड़	१५६४	चम्पावती	
२१.रामचन्द्र	१६१०–१६१२	तक्षकगढ़ दुर्ग (सलीम के राज्य में) – आधुनिक तोडारायसिंह।	
२२.भारमल कछवाहा	१६२३	गढ़ चम्पावती	
२३.महाराज सुरजन सोलंकी	१६३१	टोंक के समीप	
२४.राव भगवानदास	१६३२	चम्पावती-दुर्ग	
२५.पातसाहि – अनंगशाह	१७४५	ढाका (वर्तमान बांग्लादेश)	
२६.राजा कुशल सिंह	१७८५	झिलायनगर	

कुछ उपलब्ध महत्वपूर्ण जैन-पाण्डुलिपियाँ -

हमारी सहस्रों की संख्या में जो पाण्डुलिपियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी हैं अथवा जो सात समुद्र-पार विदेशों-**जर्मनी, फ्रांस, इटली, ब्रिटेन अथवा हिमालय को लाँघ कर चीन, मंगोलिया और तिब्बत** आदि देशों में ले जाई जा चुकी हैं, वे तो अब अपने-अपने भाग्य पर जीवित रहने या मृत हो जाने के लिये विवश हैं। किन्तु अभी लाखों की संख्या में जो पाण्डुलिपियाँ भारत में उपलब्ध हैं, उनमें से अधिकांश का वैज्ञानिक सूचीकरण भी नही हो पाया है, उनके मूल्यांकन एवं प्रकाशन की बात तो अभी योजनों दूर ही है। इस कारण इतिहास के कुछ पक्ष अभी तक प्रच्छन्न, अविकसित अथवा भ्रमित ही पड़े हुए हैं।

इधर, कुछ स्थानों में सूचीकरण के प्रसंगों में कुछ ऐसी पाण्डुलिपियाँ भी प्रकाश में आई हैं, जो शोधार्थियों के लिये नया-प्रकाश देने में समर्थ हैं। इनमें से एक पाण्डुलिपि है—**श्रावक निर्मलदास** कृत— **''भाषा पंचाख्यान''** [७०], जिसमें २००० पद्य हैं। उसकी आदि-प्रशस्ति में उसे **पंचतंत्र** तथा अन्त्य-प्रशस्ति में **पंचाख्यान-भाषा** कहा गया है और यह बतलाया गया है कि जो व्यक्ति इस पंचाख्यान-ग्रन्थ का अध्ययन करेगा, वह राजनीति में निपुण हो जायेगा। यथा—

सुनो सुनो श्रावक सकल नर, सहाय मिल भविक सब।
तुम्हरे प्रसाद यह उच्चरों **पंचतंत्र** की कथा इव।। (आदि-प्रशस्ति पद्य)
पंचाख्यान कहें प्रकट ज्यों जाने नर कोय।
राजनीति में निपुण हुवै पृथ्वीपति तो होय ।। (अन्त्य-प्रशस्ति का अंश)

उक्त रचना का प्रतिलिपिकाल वि.सं. १७५४ (१६६७ ईस्वी) है। अतः श्रावक निर्मलदास का रचना-काल इसके पूर्व का सिद्ध होता है।

उक्त प्रशस्ति में उल्लिखित पंचतंत्र का अपरनाम पंचाख्यान का उल्लेख हमारा ध्यान **जर्मनी** के प्राच्यविद्याविद् **प्रो.जॉन हर्टेल** [७१] के उस कथन की ओर आकर्षित करता है, जो उन्होंने लगभग आठ-नौ दशक पूर्व **पं. विष्णु शर्मा** कृत पंचतंत्र का सम्पादन करते समय कहा था। उनके कथनानुसार ''वर्तमान में उपलब्ध संस्कृत-पंचतंत्र के पूर्व किसी जैन-लेखक द्वारा लिखित **''पंचक्खाण''** नामक प्राकृत का जैन कथा-ग्रन्थ लोकप्रिय था। उनके अनुसार वर्तमान **संस्कृत-पंचतंत्र** उसी के आधार पर लिखित प्रतीत होता है। प्रो.हर्टेल द्वारा उल्लिखित प्राकृत-पंचक्खाण या तो नष्ट हो गया है या देश-विदेश के किसी प्राच्य शास्त्र-भण्डार के अंधेरे में पड़ा हुआ प्रकाशन की राह देख रहा है।

संस्कृत-पंचतंत्र की लोकप्रियता भारत में ही नही, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित संसार के प्रमुख देशों में रही। उत्तर-मध्यकाल में उसके राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी-अनुवाद तो हुए ही, विदेशी भाषाओं यथा—अरबी, फारसी, इटालियन, फ्रेंच, जर्मनी, रूसी तथा अंग्रेजी में भी उसके अनुवाद प्रकाशित किए गए हैं। इससे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि उसने विश्व कथा-साहित्य को भी प्रभावित किया होगा। जर्मनी में अनेक भारतीय पाण्डुलिपियाँ ले जाई गई हैं। जैसा कि पूर्व में कह चुका हूँ कि **डॉ. वी.राघवन्** के सर्वेक्षण के अनुसार विदेशों के विभिन्न ग्रन्थागारों में भारत की लगभग ५०००० पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं, जिनमें से अकेले बर्लिन में ही ३५००० भारतीय जैन एवं जैनेत्तर पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं और यह असम्भव नहीं कि उक्त प्राकृत—''पंचक्खाण भी **बर्लिन** में सुरक्षित हो और सम्भवतः **प्रो.हर्टेल** के दृष्टिपथ से भी वह गुजर चुका हो ?

---

७०. साहित्य-संदेश (आगरा, दिस.१६५६ पृ.२५२—२५३) में प्रकाशित श्री अगरचंद्र जी नाहटा के लेख के आधार पर साभार

७१. डॉ.जॉन हर्टेल द्वारा सम्पादित पंचतंत्र की भूमिका

बहुत सम्भव है कि कवि निर्मलदास ने पूर्वोक्त प्राकृत-पंचक्खाण का ही हिन्दी-पद्यानुवाद किया हो ? उसकी खोज आवश्यक है, क्योंकि उसकी उपलब्धि से जैन कथा-साहित्य के इतिहास पर कुछ नया प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

सम्राट शाहजहाँ की २४ हजार प्रिय पाण्डुलिपियाँ

कुछ फारसी पाण्डुलिपियों के अनुसार **सम्राट शाहजहाँ** के राजमहल में २५ टन सोने के बर्तन, ५० टन चाँदी के बर्तन, ५३ करोड़ रूपयों का अकेला तख्ते-ताऊस तथा अरबों-अरब के हीरा-जवाहिरात थे किन्तु ये सब उसके लिये उतने महत्वपूर्ण न थे जितनी महत्वपूर्ण थी उसके राजमहल में सुरक्षित **लगभग २४ हजार** हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ। आज वे कहाँ हैं, इसकी किसी को कोई जानकारी नहीं। यह भी जानकारी नहीं कि उनमें जैन-पाण्डुलिपियाँ कितनी थीं और वे कहाँ हैं [७२]?

जैन-पाण्डुलिपियों का प्राच्य फारसी-भाषा में अनुवाद

जैन-साहित्य केवल संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल आदि भारतीय भाषाओं में ही नहीं लिखा गया अथवा प्रमुख आधुनिक भारतीय भाषाओं में ही उसका अनुवाद नहीं किया गया है, बल्कि अपनी गुणवत्ता एवं सार्वजनीनता के कारण उसका प्राच्य विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद किया गया है। प्राच्य भाषाविद् **प्रो.हर्टेल** [७३], **डॉ. कालिदास नाग** [७४] एवं **डॉ.मोरिस विंटरनीज** [७५] के अनुसार यह तो सर्वविदित ही है कि जैनदर्शन एवं जैन-कथाओं ने समस्त विश्व को आकर्षित एवं प्रभावित किया है।

यहाँ मैं अपने शोधार्थियों तथा जिज्ञासु पाठकों के लिए फारसी में अनूदित एवं अन्य विरचित साहित्य की संक्षिप्त जानकारी दे रहा हूँ जो निम्न प्रकार है :–

फारसी अनुवाद [७६] :

(१) आचार्य कुन्दकुन्द कृत **पंचास्तिकाय**

(२) सि.च.नेमिचंद्र कृत **गोम्मटसार-कर्मकाण्ड** (अनुवादक–मुंशी दिलाराम, समय अज्ञात)

(३) जिनप्रभसूरिकृत फारसी में लिखित "**ऋषभ-स्तोत्र**" – (१४वीं सदी)

ये तीनों पाण्डुलिपियाँ रूस के प्राच्य-शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित हैं।

प्रश्नोत्तररत्नमालिका (अम्गेघवर्ष कृत) के तिब्बती-अनुवाद की चर्चा मैं पीछे ही कर चुका हूँ।

मुस्लिम बादशाहों द्वारा जैन-लेखकों का सम्मान

जैनियों ने अपनी सत्यनिष्ठा, विश्वसनीयता, कर्मठता, व्यावहारिक सूझ-बूझ, वाणिज्य-कौशल, सार्वजनिक कार्यों के लिए दान में उदारता, लेखन-चातुर्य, तथा अपने

---

७२ नवनीत मासिक पत्रिका, (बम्बई) नवम्बर १९५५ पृ. ५३–५६

73 The Jainas in the History of Indian Literature P. 10

७४. अहिंसावाणी– जैन कथा विशेषांक

७५. The Jainas in the History of Indian Literature P. 9

७६. दे. Image of India (Moskow, USSR) 1984

शुद्धाचरण से अनेक हिन्दु तथा मुस्लिम शासकों को निरन्तर ही प्रभावित किया है। इनकी सूचनाएँ मध्यकालीन जैन पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों तथा **बाबरनामा, आइने-अकबरी, जहाँगीरनामा, शाहजहाँनामा** तथा अन्य अनेक शाही-फरमानों में मिलती हैं। उनके अनुसार श्रावकों तथा श्वेताम्बर-जैन-साधुओं के लिए उनकी ओर से श्रद्धा-समन्वित सम्मान प्राप्त थे। समय-समय पर मुस्लिम-बादशाहों की ओर से उन्हें **खुश्फहम** [७७], **नादिरज्जमा** [७८], **जहाँगीरपसन्द** [७९], **महोपाध्याय** [८०] जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया। इस प्रकार के सम्मान-प्राप्त साधकों में महामुनि श्री **हीरविजय सूरि, भानुचन्द्र -सिद्धिचन्द्र गणि, विजयसेनसूरि, उपाध्याय जयसोम, साधुकीर्ति** एवं **दयाकुशल** आदि के नाम अग्रगण्य हैं।

भानुचन्द्र-सिद्धिचन्द्र गणि ने **अकबर** एवं **जहाँगीर** के विनम्र निवेदन पर फारसी-भाषा भी सीखी थी तथा अनेक जैन कृतियों के साथ-साथ **कादम्बरी** के कथा-भाग के सारांश का **फारसी** में अनुवाद भी किया था। जैन-कृतियों में **भक्तामर-स्तोत्र**-वृत्ति, **आदित्यसहस्रनामस्तोत्र** एवं कुछ जैन-कथाएँ प्रमुख हैं। सम्राट **अकबर** उक्त जैन-कृतियों का समय-समय पर उनसे सस्वर पाठ सुनता था।

जैन-साधुओं के अनुरोध पर इन मुस्लिम-शासकों ने भी जैन–मन्दिरों को ध्वस्त न करने, पर्यूषण में प्राथमिकता तथा माँसाहार न करने तथा **जजिया-कर** माफ कर देने के लिए शाही-फरमान भी जारी किए थे [८१]।

फारसी भाषा में लिखित ऋषभदेव स्तोत्र-

कुछ समय पूर्व गुजरात के एक शास्त्र-भण्डार में एक लघु पाण्डुलिपि ऐसी भी मिली है, जिसमें फारसी-भाषा-लिपि में तीर्थंकर ऋषभदेव का स्तवन किया गया है। उसके मूल-लेखक एवं संस्कृत-टीकाकार **जिनप्रभसूरि** हैं तथा प्रतिलिपिकार हैं **उदयसमुद्रगणि** [८२]।

१४वीं सदी के बहुभाषाविज्ञ उक्त **आचार्य श्री जिनप्रभसूरि** द्वारा मध्यकालीन **फारसी-भाषा** में रचित श्री **ऋषभ-स्तोत्र** के मूल-पाठ को देवनागरी में आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

उक्त जिनप्रभसूरि **दिल्ली** के सुल्तान **मुहम्मद-बिन-तुगलक** (सन् १३२५–५१ ई.) के समकालीन थे। जब सुल्तान को उक्त आचार्य के प्रकाण्ड-पाण्डित्य की सूचना मिली, तब उसने अपने दरबार के जैन-ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित धराधर-पण्डित को सन्देशहर के रूप में भेजकर दिल्ली में पधारने की उनसे विनम्र प्रार्थना की। आचार्यश्री को भी जब यह विदित हुआ कि सुल्तान की नीति सर्वधर्म-समन्वय की है तथा उसने अपने शासनकाल में सभी को अपने-अपने धर्म को मानने तथा देवी-देवताओं के पूजने की पूरी आजादी दे

७७. अकबर सुरत्राण हृदयाम्बुजषट्पदः।
दधानः खुशफहमिति विरुदं शाहिनार्पितम्।। भक्तामरस्तोत्रवृत्तिः (आदिप्रशस्ति)

७८–७९. वही. (जहाँगीर द्वारा प्रदत्त विरुद्, **दे. जिनशतकटीका** अन्तिम पुष्पिका)

८०. जिनशतक-टीका-प्रशस्ति तथा काव्यप्रकाश-खण्डनम् की प्रशस्ति

८१. सिद्धिचन्द्र–भानुचन्द्र-गणि चरित, (सिंघी जैन सीरिज), अहमदाबाद, १९४१.

८२. जैन-साहित्य-संशोधक ३/६ पृ. २४–२५ एवं प्राकृत–विद्या ......

रखी है, तब वे पैदल चलकर स्वयं दिल्ली पधारे। सुल्तान ने उनका पूरा-पूरा सम्मान किया।

इसके भी अनेक साक्ष्य मिलते हैं कि **सुल्तान** ने न केवल जैन-मुनियों एवं भट्टारकों को सम्मानित कर उन्हें अपने धर्म-प्रचार की आजादी दी, बल्कि अनेक दुर्लभ-ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों की सुरक्षा की व्यवस्था में भी योगदान किया। केवल यही नहीं, बल्कि उसने अनेक **सयूरगानों (श्रावक, सरावगीयान** अथवा **सरावगी जनों**) तथा अनेक **जैन-अग्रवालों** को अपना विश्वस्त मानकर उन्हें ऊँचे-ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित भी किया था।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि **मध्यकालीन फारसी भाषा शौरसैनी-प्राकृतापभ्रंश** से कितनी प्रभावित थी, उसके अनेक उदाहरण अधोलिखित स्तोत्र में मिल सकते हैं। **शौरसैनी** एवं **फारसी** के प्राचीन काल से ही घनिष्ठ-सम्बन्धों के अध्ययन-शोध करने वाले भाषा-शास्त्रियों के लिये इस स्तोत्र में पर्याप्त शब्द-सम्पदा उपलब्ध हो सकती है।

बहुत सम्भव है कि **मुहम्मद-बिन-तुगलक** की प्रेरणा से **जिनप्रभ-सूरि** ने उक्त **ऋषभ-स्तोत्र** की रचना की हो, जो भक्तिभरित, सरल एवं श्रेष्ठ हैं। यह भी सम्भव है कि सुलतान तुगलक विशिष्ट जैन-पर्वों के दिन जैन-समाज के मध्य उपस्थित होकर इस स्तोत्र का पाठ भी सुनता हो और जिससे परवर्त्ती **सम्राट अकबर** एवं **शाहजहाँ** को भी प्रेरणा मिली हो, क्योंकि **भानुचन्द्र-सिद्धिचन्द्र-गणी** एवं **महाकवि बनारसीदास** [८३] के साहित्य से ज्ञात होता है कि उन दोनों सम्राटों के भी जैन-साधकों, जैन-कवियों एवं जैन-समाज से घनिष्ठ सम्पर्क थे। अपने सम्मान्य पाठकों को इसकी संक्षिप्त जानकारी देने के लिए उक्त फारसी स्तोत्र की संस्कृत-टीका, शब्दार्थ एवं हिन्दी-अनुवाद के साथ उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

अल्लाल्लाहि तुराहं कीम्बरु सहियानु तुं भरा ष्वांद।
दुनीयक समेदानइ बुस्मारइ बुध चिरा नहमं।।१।।

संस्कृत-व्याख्या –१. अल्लाल्ला० हे पूज्य। तवाहं कर्मकरः। त्वं च पृथिवीपतिर्मम स्वामी। वसुधालोकान् जानासि। हे देव। चिरा कस्मात् अस्मान्न संभालयसि। यतस्त्वं मेदिनीं सर्वामपि वेत्सि, ततो मां दुःखिनं (कथं) न वेत्सीत्यर्थः।

येके दोसि जिहारि पंच्च शस ल्ल्य हस्त नो य दह।
दानिसिमंद हकीकत आकिलु तेयसु तुरा दोस्ती।।२।।

संस्कृत-व्याख्या -२. एको द्वौ त्रयश्चत्वारः पंच षट् सप्त अष्टौ नव दश वा ते एव नरा गुणिनो मध्यस्थाः साधवो येषां त्वदीया मैत्री। कोऽर्थः एको वा द्वौ वा यावत् दश वा त एव गुणिनो येषां त्वय्यनुरागो नापरे। गाथाद्वयं।

आनिमानि खतमधु खुदा विस्तवि किंचि बिवीनि।
माहु रोजु सो जामु मुरा ये कुय दिलु विनिसीनि।।३।।

८३. दे. अर्थकथानक, (बम्बई, १६४३) भूमिका पृ. २४

संस्कृत-व्याख्या -३. हे स्वामिन्। अस्मदीयां भक्तिं किंचित् अल्पमात्रां श्रृणु आलोकय। विज्ञप्तिकां श्रृणु विनयं च विलोक्य इत्यर्थः। मासं दिवसं रात्रिं यामं एकमपि मम दिलु हृदये विनसिनी उपविश इत्यर्थः।। ख्तमथुर्भक्तिर्यथा –

आलोवोमसुआरदुः ख्तमथुर्भक्तिः सुराद्गायनं
नृत्यं स्याद्रसकुर्नयश्च हथमु रुढिस्तदा काइदा।
अन्यायोपि हरामु सोगतिरथो दिव्यादिका जूमला
संघातस्य स यातनिहोरक इति स्याद्विक्रयः व्योध्वनी।।
तुं मादर तुं पिदर बुध तुं ब्रादर तुं आमु।
नेसि बिहेलिय तइं अवरि बीजें मोरइ कांमु।।४।।

सं.व्याख्या -४. त्वं ....माता त्वं विमुच्य अपरेण बीजे किमपि मम कार्यं नेमि नास्तीत्यर्थः।

महमदमालिम मंतरा ईब्राहिम रहमाणु।
ईहं तुरा कुताबीआ मेदिहि मुक्यल्फरमाणु [८४]।।५।।

सं.व्याख्या -५. त्वं महमदो विष्णुः, ईब्राहिमो ब्रह्मा, रहमानो महेश्वरः त्वमेव। अथ रहत्यागे इति चौरादिको विकल्पे नंतो धातुः। रहति रागद्वेषौ त्यजतीत्येवं शक्तः। शक्तिवयस्ताच्छील्ये इति शानङ्। आन्मोंत आने मोंतः णत्वे कृते रहमाण इति रूपं। सर्वेपि देवास्त्वमेव। मालिमः पंडितो मम त्वं। इहं एषोऽहं तुरा तव कुतावीआ लेखशालिकः। मे मेदिहि मम फुरमाण आदेशं देहो, किं करवाणि अहं। पंडितो हि, शिष्यस्यादेशं ददातीति भावः।

फरमूद तुरा जु मेकुनइ न सुधंग।
खोसु शलामथ आदतनु अर्ज्जदि छोडिय यंग।।६।।

सं.व्याख्या -६. फरमूद तुरा तव आदिष्टं यो मेकुनइ करोति, संधंग दुःखानि न मेचीनइ न चुंटयेत्। खोसं सुखं शलामथ कुशलं आदत साहाय्यं नु नव्यं, अर्ज्जदि लभते। कथं भूतः छोडिययंगः मुक्तकलह इति संबोधनं गतद्वेष इति भावः।

सादि न खरिम नवा अगर तं कुय तुरा सलामु।
बंदि षलात सु मे दिहइ वासइ ने हर हरामु।।७।।

सं.व्याख्या -७. सादिति तुष्टो न वा मेति। अगर यद्यपि त्वं कुय क्वापि तुरा सलामु तव नमस्कारः, वंदित्ति ईदृशः। किं च षलात राजप्रसादः स मे दिहइ ददाति। हर इति प्रत्यर्थे त्वां प्रतिनमस्कारो हरामु व्यर्थ निवासइ न भवति। कोऽर्थः यदि न तुष्टो न रुष्टोऽसि ततस्तव नमस्कारो राजप्रसादं कथं ददाति, कथं व्यर्थो न स्यादित्‌र्थः।

जानूउरु यो मेकुसइ मिदिहदि तो न विहस्ति।
बुचिरुक् बिल्लइ दोजखी धंग बहुत तसु हस्ति।।८।।

---

८४. प्रतीत होता है कि मानतुंग-सूरि कृत भक्तामर-स्तोत्र के २५वें पद्य से यह पद्य प्रभावित है–
तुलना कीजिये– बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्
आदि।

सं.व्याख्या -८. जानूउरु ति जीवान्, यो मेकुसइ हंति, स विहस्ति स्वर्ग, न मिदिहदि न प्राप्स्यति। किं तु बिल्ल इति निश्चितं, बुचिरुक् स्थूलानि, दोजखीधंग नरकदुःखानि प्रभूतानि, तस्य हस्ति भवंति। अतएव तव सेवको जंतून्न हंतीत्यर्थः। दूहक षट्कं।

अस्तारां तेरीखु बदानु साले साते दीग सरानु।
चिस्मदीदयं बुध रू तुरा बूदी कार सऊ बस मरा।।६।।

सं.व्याख्या -६. अस्तारां नक्षत्रं, तेरीखु तिथिः, छ, (ब) इति भाषाविशेषे, दातु शरीरं, साले संवत्सरः साते घटिका, दीन प्रभातं, नु वाक्यालंकारे। सरात (भ) य्यं एतानि स्थानानि, भव्यानि अथ मम जातानि, ये यतः, चिस्म नेत्रद्वयेन, तुरा तव रू मुखं दीद दृष्टं, कार प्रयोजनानि, सउ सर्वाणि कार्याणि संपूर्णानि बभुवुरिति भावार्थः। चतुष्पदी छन्दः। दीद इति विलोकितम्। तथा च –

माहि उस्तुरु गाउ गाउनर खू (ग) पलंगो।
आहू गुरवा मुरुगु संरु गामेसि कलागो।
मगस सितारक मारु बाजु गाबसु ताउसग।
ऊयजकु मखलु कतानु खडख सगु बत बुज मूसग।
दुज खडसार नकासु जनि दरजीउ जरी हजामु।
ते वासई जिम मेकुनइं सिरिजिन तुरा सलामु।।१०।।

सं.व्याख्या -१०. मही मत्स्यः, उस्तुरु उष्ट्रः, गाउ गौः, गाउनर बलीवर्दः, खूग शूकरः, पलंगश्चत्रकः, आहू कृष्णसारः, गुरुवा मार्जारः, मुरुग कुर्कुटः, सेरु व्याघ्रः। ग्रामेसि महिषी, कुलग काकः, मगस मक्षिकाः, सितारिका काबरिः, मारु पन्नगः, वायु (बाजु) श्येनः, गावसु ऋक्षुः, तारुसग मयूरः, ऊयजकु गृहगोधीका, मखलु तीड, कुतान मत्कुणः खयर चंचटः, सगु श्वा, बत हंसः, बुज अज्जा, मूसग मूषकाः, एतैः शब्दैः तिर्यचः प्रतिपादिताः। सांप्रतं, कुंमानुषयोनयःदूर्जयौ खउसार चर्का (चर्म) कारः, नकासु चित्रकारः, जनि महिला, दरजीउ सूचिकः, जरी सुवर्णकारः, हजाम नापित इत्यादि अन्या अपि विकृतिजातयो ग्राह्याः जातिग्रहणे तज्जातीयस्यापि ग्रहणमिति वचनात्। हे जिन। से वासइं भवंति ये तब नमस्कारं (न) कुर्वति। कोऽर्थः–तव नमस्कारमकृत्वा तिर्यग्योनौ पूर्वोक्तस्वरूपेषु सत्वेषु कुमानुषत्वे च जीवा उत्पद्यंत इति भावः।

शहरु दिह उलातु छत्रु खाफूर ऊदु
मिसिकि जरु नवातु ष्वांद रोजी दरास।
कसव पिसि तुरा इं नो सरा मेखुहाइ
रिसह हथमु दोस्ती वंदिने मेदिहीति।।११।।

सं.व्याख्या -११. शहरु पत्तनं, दिह ग्रामः, उलात देशः, छत्रु छत्र, छत्र ग्रहणात् राज्यं ज्ञेयं। खापरु कर्पूरं, ऊदु अग्ररुः, मिसकि कस्तुरी, जरु सुवर्ण, नवातु शर्करा, ष्वांद स्वामिन्, रोजी विभूतिः दरास विस्तीर्णः कसन इक्षुः पिमि (स) पार्श्वे तुरा तव इं एष मल्लक्षणों जनः। नो नैव शराभज्ज पूर्वोक्तं वस्तुजातं, मेषुहोई याचेत किंतु हे ऋषभ, हेथमु न्यायं दोस्ती सर्वस्यापि मैत्री बंदिने इयदेव त्वं मे दहीति देयाः। कोऽर्थः अहं अ (न्य) त्

किमपि न याचे किंतु त्वं मम न्यायं मैत्रीमेव देया इति भावार्थः।

अस्मिंस्तवने क्वचित् **पारसी** क्वचित् **आरब्बी क्वचिदपभ्रंशो** ज्ञेयः।

तुरा मरा इजि सर्वत्र संबंधे संप्रदाने च ज्ञातव्यं। तथा च कुरानकारः – अजइव्य त्वया दानसंबंधं संप्रदाययोः। रा सर्वत्र प्रयुज्येतान्यत्र वाच्यं सु रूपतः।।

आनि मानि अस्मदीयं किं चि कियच्चं दिरीदृशं। चुनी हमचुनीन् ताद्दक वंदिनं तादृक् इयदेव च।।

चोर्जे किमपि इत्यादि **कुरानोक्तं** लक्षणं सर्वत्र विज्ञेयं संप्रदायाच्च।

इति श्री **ऋषभदेव** स्तवनं सटीकमिदमलेषि। श्री **जिनप्रभसूरिकृतिरियं**।

शब्दार्थ एवं हिन्दी अनुवाद [८५]

(१) – अल्लाल्लाहि	=	अल्लाह, ईल्लाही (हमारा ईश्वर) पूज्य,
सुराहं	=	मैं तुम्हारा,
सहिषानु	=	शाहेजहान, जगत का मालिक,
तुं	=	तुम,
मरा	=	हमारा,
ष्वांद	=	खाविंद, पति, स्वामी,
दुनीयक	=	दुनियाँ को,
समेदानइ	=	जानते हो,
बुध	=	हे देव,
बुस्मारइ	=	विस्मृत कर दिया,
चिरा नम्हं	=	सुरक्षा नहीं देते।

हे अल्लाह, हे पूज्य, मैं आपका सेवक हूँ और आप पृथ्वीपति, मेरे स्वामी। जब आप सभी लोकों को जानते हैं, तब फिर हमारी खोज खबर क्यों नहीं लेते? हमारे दुखों को इतने समय से क्यों नहीं समझते?

(२) – येक	=	एक,
दो सि	=	दो, तीन,
जिहारि	=	चार,
पच्च	=	पांच,
दह	=	दस,
दानिसिमंद	=	बुद्धिमान् मध्यस्थ,
हकीकत	=	वास्तविक,
आकित	=	होशियार कुशल,

८५. मैं (इस निबंध का लेखक) स्वयं फारसी भाषा नहीं जानता किन्तु अपने मुस्लिम-विद्वान् मित्रों की सहायता से शब्दार्थ एवं हिन्दी-अनुवाद पाठकों के हितार्थ तैयार किया है। त्रुटियों के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

शप्त	=	छह,
ल्ल्य	=	सात,
हस्त	=	आठ,
नोय	=	नौ,
तेयसु	=	उनमें,
तुरा	=	तुम्हारी,
दोस्ती	=	मित्रता।

संसार में एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, तथा दस आदि सद्गुणों से युक्त वे ही गुणी, कुशल, मध्यस्थ अथवा साधुगण कहलाते हैं, जिनका आपके प्रति मैत्री-भाव अथवा अनुराग हो।

(३) – आनिमानि	=	हमारी प्रार्थना,
खतमथु	=	खिदमत, सेवा, भक्ति,
खुदा	=	हे खुदा, हे स्वामिन्,
विस्तवि	=	ध्यान दीजिए,
किंचि	=	किंचित्मात्र,
विवीनि	=	विनय,
रोजु	=	रोज, दिल,
तो	=	रात्रि,
जाम	=	याम,
मुरा	=	मेरा,
येकुय	=	एक,
दिलु	=	दिल, हृदय,
विनसनि	=	स्थित है।

हे स्वामिन्, हमारे अल्पमात्रिक भक्ति-भाव की ओर भी जरा ध्यान दीजिए और उसे अर्थात् मेरी व्यथा-कथा को सुनिए। माह, दिवस, रात्रि अथवा (कम से कम) एक क्षण मात्र के लिए भी तो हमारे हृदय में स्थित होइये (निवास कीजिए)।

(४)–नेसि	= नेस्त, नहीं,	विहेलिय	=	छोड़कर,
अवरि बीजे	= अन्य दूसरे से,	तुं	=	तूंही
मोरइ	= मेरा	मादर	=	माता,
कामु	= काम,	पिदर	=	पिता,
आम	= आम सभी कुछ,	ब्रादर	=	भाई,
बुध	= हे जानकार (सर्वज्ञ)			

हे सर्वज्ञ प्रभु, तू ही हमारी माता है और तू ही पिता और भाई, तुझे छोड़कर हमारा और किसी से भी कोई काम नहीं।

(५)–महमद	= मुहम्मद, ईश्वर,	कुतावीआ	= कातिव, लेखक,
मालिम	= उस्ताद, शिक्षक,	मे मेदिहि	= मुझे फरमान (आदेश) दीजिए कि मैं क्या वीतराग,कार्य करुँ?
ईब्राहिम	= ब्रह्मा,		
रहमाणा	= महेश्वर,		
ईहं	= यह मैं ,	मुक्यल	= दीजिए।
तुरा	= तुम्हारा,		

हे प्रभु, तूही मेरा महमूद अर्थात् विष्णु है, तू ही मेरा इब्राहीम, अर्थात् मार्गदर्शक ब्रह्मा और तू ही मेरा रहमान अर्थात् महेश्वर है। मेरे लिए तुम ही सभी प्रकार के देवता हो। तुम्हीं मेरे लिए सत्पण्डित हो। मैं तो आपका आज्ञापालक लेखक मात्र हूँ। मुझे आप आदेश दें कि मैं क्या करुँ ? क्योंकि सत्-पण्डित ही शिष्य को आदेश दे सकता है। (इसकी तुलना भक्तामर-स्तोत्र के २५वें पद्य से की जा सकती है)।

(६) फरमूद तुरा	= तुम्हारा आदेश,	यंग	= जंग, लड़ाई, रागद्वेष,
जु	= जो,	छोड़िय	= छोड़ना,
मेकुनइ	= नहीं करता है,	सुधंग	= दुख,
खोसु	= सुख, सन्तोष,	मेचीनइ	= दूर नहीं करता है,
शलामथ	= सलामत, कुशल,		
आदतनु	= सहायता,		
अर्ज्जदि	= प्राप्त करता है,		
नु	= नव्य,		

विश्व के हे स्वामिन्, तुम्हारे आदेश का जो पालन नहीं करता, वह विश्व के दुखों से छुटकारा नहीं पा सकता, वह सुख-सन्तोष, कौशल तथा सहानुभूति भी प्राप्त नहीं कर सकता।

(७)–सादि	= शादी, खुशी, तुष्टि,	सु	= सुन्दर,
खस्मि	= दुश्मनी,	में	= मुझे,
कुय	= कोई भी,	दिहइ	= देता है,
अगर	= यद्यपि,	बासइ	= निवास करता है,
तं	= तुम,	हर	= प्रतिनमस्कार,
तुरा	= तुम्हारा,	हरामु	= व्यर्थ, हराम,
सलामु	= नमस्कार,	न	= नहीं,
वंदि	= ऐसा,		
षलात	= राजप्रसाद, खलअत,		

हे प्रभु, यदि आप हमारा नमस्कार स्वीकार न करें तथा आप उससे सन्तुष्ट न हों और हमें कोई वरदान न दें तब क्या हमारा नमस्कार व्यर्थ नहीं चला जायेगा ?

(८)–जानूउरु	= जानवर, पशु,	बुचिरुक	= बुजुर्ग, मोटा,
या	= जो,	बिल्लइ	= निश्चित,
मेकुसई	= मारता है,	दोजखी धंग	= नरक के भयानक अुख,
सो	= वह,	हस्ति	= होते हैं, भवति,
न	= नहीं,	तसु	= तस्य, उसके,
विहस्ति	= बेहस्त, स्वर्ग,	बहुत	= प्रभूत, अधिक,

जो मनुष्य पशुओं (एवं प्राणियों) की हत्या करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रत्युत, निश्चित रूप से वह हत्यारा नरक में जाकर भयानक कष्ट भोगता है। यही कारण है कि आपका सेवक कभी भी प्राणि-हत्या नहीं करता।

(९)–अस्तारां	= नक्षत्र, सितारा, तारा,	चिस्त	= दोनों नेत्रों से,
तेरीखु	= तिथि, तारीख,	मदीदयं	= देखा,
वदानु	= वदन, शरीर,	रू	= साक्षात् मुख,
साले	= साल, वर्ष,	तुरा	= तव तुम्हारा,
साते	= साखत, घड़ी,	कार	= काम, प्रयोजन,
दीग	= प्रभात,		
सउ	= सर्व,	सभीसरानु	= ये भव्य स्थान,

हे प्रभु, हमारे दोनों नेत्रों ने यदि आपके भव्य मुख का दर्शन कर लिया तो हम यही मानते हैं कि हमें सुन्दर-सुन्दर नक्षत्र, तारीख, साल, घड़ी सुखद-प्रभात एवं सुन्दर भव आदि सभी कुछ प्राप्त हो गए तथा हमारे सभी मनोरथ भी पूर्ण हो गए।

(१०)–माही	= मत्स्य	मगस	= मक्षिका
उस्तरु	= उष्ट्र	सितारिका	= कावरि-प्राणी-विशेष
गाउ	= गा	मारु	= पन्नग
गाउनर	= वृषभ,बैल	वायु	= (बाजु) = श्येन
खूग	= शूकर	तारुसग	= मयूर
पलंगो	= चक्रक	ऊयजकु	= गृहगोधिका
आहू	= कृष्णसार	मखल	= तीउ, तीड
गुरुवा	= मार्जार	कतानु	= मत्कुण
मुरुगु	= मुर्गा	खयख	= चंचट
सेरु	= शेर, व्याघ्र	गावसु	= रीछ
कुलग	= काकः, कौआ		
सगु	= श्वान	जरी	= स्वर्णकार
बत	= हंस	हजामु	= नापित
बुज	= अजा = बकरी	ते	= वे
मूसग	= चूहा, उंदुर	वासइं	= होते हैं, भवन्ति
दुजख	= दुर्ज = तीतर	जिम	= यं जो

खउसार	= चर्मकार	मेकुनई	= नहीं करते हैं
नकासु	= चित्रकार	सिरिजिन	= हे श्री जिनेन्द्र
जनि	= महिला	तुरा	= तुम्हें
दरजीउ	= सूचीकार, दर्जी	सलामू	= सलाम, नमस्कार

हे भगवान्, जो आपको नमस्कार नहीं करते, उन्हें मत्स्य, उष्ट्र, गाय, बैल, सुअर, चक्रक, कृष्णसार, बिल्ली, कुक्कुट, शेर, व्याघ्र, महिषी, काक, मक्खी, कावरि, पन्नग, बाज, रीछ, मयूर, गृहगोधिका, तीड, मत्कुण, चंचट, श्वान, हंस, बकरी, तीतर, मूषक आदि तिर्यंच गति तथा चर्मकार, चित्रकार, महिला, सूचिकार, स्वर्णकार, नापित आदि जातियों में जन्म प्राप्त होता है।

(११)–शहरु	= शहर, नगर, पत्तन	दरास	= विस्तीर्ण, दराज
दिह	= ग्राम (डीह)	कसव	= इक्षु
उलात	= देश	पिसि	= पार्श्व में
छत्रु	= छत्र	तुरा	= तव तुम्हारा
खापूरु	= कर्पूर	इं	= एव, यह
उदु	= अगरु	नो	= नैव, नहीं ही
मिसिकि	= कस्तूरी	सरा	= शरह, सर्व
जरु	= स्वर्ग	मेखुहाई	= याचना करता हूँ
नवातु	= शर्करा	रिसहा	= हे ऋषभ
ध्वांद	= स्वामी	दोस्ती	= सभी के साथ मैत्री
रोजी	= विभूति	वंदिनं	= वन्दना, याचना
		में दिहीति	= मुझे दीजिए, बस

हे ऋषभदेव, मैं आपसे शहर, ग्राम, देश, एकछत्र राज्य, कर्पूर, अगरु, कस्तूरी, सुवर्ण, शर्करा, स्वामीपना, विभूति, ईख आदि की याचना करने नहीं आया हूँ, बल्कि हे स्वामिन् , मैं तो आपसे यही याचना करने आया हूँ कि मैं सभी के प्रति न्याय करुँ, तथा सभी का मित्र बनूँ।

हमारा विस्मृत तथा त्रुटित पाण्डुलिपि-साहित्य

अपभ्रंश के आद्य महाकवि **स्वयम्भू** कृत जैन-महाभारत-कथा-सम्बन्धी आद्य-अपभ्रंश ग्रन्थ–"**रिट्ठणेमिचरिउ**" दीर्घ-प्रतीक्षा के बाद अब छपना प्रारम्भ हुआ है। उसकी तथा **पउमचरिउ** की प्रशस्तियों में कवि ने संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के पूर्ववर्त्ती अनेक ऐसे जैन एवं जैनेतर महाकवियों के नामोल्लेख किए हैं, जिनमें से अधिकांश विस्मृति के गर्भ में जा चुके हैं।

राजा भोज के राज्यकाल में ११वीं सदी के कुन्दकुन्दान्वयी **कवि नयनन्दी** (११वीं सदी) ने वहीं के **जिनवर-विहार** में बैठकर अपने **सुदंसणचरिउ** के साथ ही ५८ सन्धि वाला अपभ्रंश-महाकाव्य "**सयलविहिविहाणकव्व**" लिखा था। उसकी मध्य की १६ सन्धियाँ अर्थात् १५वीं से लेकर ३१वीं सन्धि तक का अंश नष्ट हो जाने के कारण **अब**

वह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया है। उसकी प्रशस्ति में पूर्ववर्ती ३३ कवियों के नामोल्लेख हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश के नाम एवं उनके ग्रन्थ साहित्यिक इतिहास से सदा-सदा के लिये विस्मृत हो चुके हैं।

इसी प्रकार महाकवि **रइधू** कृत सचित्र **संतिणाहचरिउ** जहाँ त्रुटित रूप में उपलब्ध है, वहीं उसका **पज्जुण्णचरिउ** नामक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं तथा उसके **सिरिवालचरिउ** की एक पाण्डुलिपि **पेरिस (फ्रांस)** के प्राच्य-शास्त्र भण्डार में भी उपलब्ध है।

महाकवि **जयमित्र हल्ल** कृत अपभ्रंश **"महावीरचरिउ"** की भी वही स्थिति है। उसकी बीच की ६ सन्धियाँ नष्ट हो जाने के कारण सन् १६७४–७५ में भ.महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण समारोह-वर्ष में उसका प्रकाशन त्रुटित होने के कारण ही रोक दिया गया था।

अथक खोज करने पर भी अभी तक **अणंगचरिउ** (दिनकरसेन) **करकंड-चरिउ** (रइधू), **सुदंसणचरिउ** एवं **पज्जुण्णचरिउ** (रइधू) **जसहरचरिउ** (अमरकीर्ति), **चंदप्पहचरिउ** (मुनि विष्णुसेन), **धणयत्तचरिउ** (अज्ञातकर्त्तृक), **पउमचरिउ** (चउमुह) **पउमचरिउ** (सेढु) **पंचमीकहा** (चउमुह) **पंचमीकहा** (स्वयम्भू), **महावीरचरिउ** (अमरकीर्ति), **रिट्ठणेमिचरिउ** (चउमुह), **वरंगचरिउ** एवं **संतिणाहचरिउ** (कवि देवदत्त), **समत्तकउमुई** (सहणपाल), **अणुपेहा** (सिंहनंदि), **अमयाराहणा** (गणि अंबसेन), **झाणपईव** (अमरकीर्ति), **णवयारमंत** (नरदेव), **धर्मोपदेशचूडामणि** (अमरकीर्ति), **अंबादेवी चर्चरीरास** (कवि देवदत्त) जैसे ग्रन्थ अद्यावधि अनुपलब्ध ही हैं। इसी प्रकार –

महाकवि वीर (१०वीं सदी), **श्रीचन्द्र** (११वीं सदी), **विबुधश्रीधर** (१३वीं सदी), **धवल** (जिन्होंने १२२ सन्धियों में हरिवंशपुराण की रचना की, ११वीं सदी), **गणि देवसेन** (१२वीं सदी), **महाकवि सिद्ध** (१३वीं सदी), **धनपाल** (१५वीं सदी), **महाकवि रइधू** (१५–१६वीं सदी), **भट्टारक श्रुतकीर्ति** (१६वीं सदी), **कवि महिन्दु** या **महाचंद** (१६वीं सदी), **पण्डित भगवतीदास** (१७वीं सदी), आदि सिद्धहस्त कवियों ने भी अपनी-अपनी रचनाओं में अपने पूर्ववर्त्ती अनेक प्रमुख साहित्यकारों एवं उनके साहित्य के नामोल्लेख किये हैं किन्तु वर्तमान में उनमें से अधिकांश की कोई जानकारी नहीं मिलती। यदि यह साहित्य उपलब्ध हो जाता है, तो मध्यकालीन इतिहास के विविध-पक्षों को मुखरित करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि हमारे महान चिन्तक, साधक, आचार्य लेखकों ने ज्ञान-विज्ञान एवं लोकजीवन की शायद ही ऐसी कोई विधा हो, जिस पर उन्होंने अपनी लेखनी न चलाई हो। कर्मवाद, परमाणुवाद, आत्मवाद, अध्यात्मवाद, न्याय, नीति, चरित, काव्य, कथाकाव्य, छन्दशास्त्र, व्याकरण, कला, संगीत, शिल्प, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, द्रव्य–व्यवस्था, लोकाचार, यहाँ तक कि पाक-शास्त्र, जीवशास्त्र, वनस्पति-विज्ञान, इतिहास, भूगोल, खगोल आदि के क्षेत्र में भी उत्कृष्ट-कोटि के ग्रन्थ लिखे हैं।

हंसदेव नामक जैनाचार्य ने तो **मृग-पक्षिशास्त्र** नामक ३६ सर्गों के १६०० श्लोकों में एक ग्रन्थ लिखा, जिसमें २२५ प्रकार के भारतीय पशु-पक्षियों की भाषा एवं

मनोविज्ञान का विश्लेषण किया गया है। इसे जैनेत्तर-समाज ने भी प्रकाशित एवं प्रचारित कर प्रसन्नता का अनुभव किया है।

इसी प्रकार आचार्य **उग्रादित्य** (१०वीं सदी) ने अपने **कल्याणकारक** नामक ग्रन्थ में वनस्पति-शास्त्र सम्बन्धी एक खोजपूर्ण नई सूचना दी है। उन्होंने उसके **पुष्पायुर्वेद-प्रकरण** में २५००० प्रकार के भारतीय पुष्पों की चर्चा की है, जबकि वर्तमान कालीन सर्वेक्षणों में केवल १८००० प्रकार के पुष्प ही मिलते हैं। बाकी की पुष्प-जातियाँ—प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं। एतद्विषयक अन्य अनेक पाण्डुलिपियाँ भी विभिन्न शास्त्र-भण्डारों में सुरक्षित होने की सम्भावना है।

प्रकाशित कुछ पाण्डुलिपि-सूचियाँ

यद्यपि कुछ शास्त्र-भण्डारों ने उपलब्ध पाण्डुलिपियों का सूचीकरण किया है, फिर भी, सहस्रों पाण्डुलिपियाँ अभी अनेक शास्त्र-भण्डारों, व्यक्तिगत संग्रहों या नवांगी जैन मन्दिरों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। अभी तक न तो उनका सूचीकरण हुआ है और न वे सुरक्षित स्थिति में ही हैं। कुछ स्वार्थी लोलुपीजन उनका व्यक्तिगत रूप से विक्रय भी करते रहें हैं, कुछ को दीमक-चूहों ने खा डाला है और कुछ मौसमी नमी के कारण स्वतः ही काल-कवलित होती जा रहीं हैं। इस प्रकार हमारे राष्ट्र एवं समाज का गौरव तथा भारतीय एवं सामाजिक इतिहास के निर्माण में सहायक मानी जाने वाली पाण्डुलिपियों का दुर्भाग्य देखकर मन व्यथित हो उठता है।

अभी तक की पाण्डुलिपियों के सर्वेक्षण, सुरक्षा एवं सूचीकरण में जिन संवेदनशील सरकारों तथा शोध-संस्थानों ने कार्य किये हैं, उनमें स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व **मध्यप्रदेश एवं बरार**-नागपुर-प्रशासन, **जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय**, बम्बई, **गायकवाड ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट**, बडौदा, **सिंघी जैन ग्रन्थमाला**, बम्बई, **जैन शास्त्र भण्डार**, जैसलमेर, **जैन शास्त्र भण्डार**, पाटन, **राजस्थान पुरातत्व विद्यामन्दिर**, जोधपुर एवं जयपुर, **भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट**, पूना, **अड्यार लाईब्रेरी मद्रास**, **डेकिन कॉलेज**, पूना, **आमेर शास्त्र भण्डार**, जयपुर, **जैन शास्त्र भण्डार**, नागौर, **जैन सिद्धात भवन**, **आरा (बिहार)**, **गवर्नमेंट क्वींस कॉलेज (शास्त्र भण्डार)**, वाराणसी, **दरभंगा राज्य लाईब्रेरी**, दरभंगा, **हिन्दी साहित्य सम्मेलन** प्रयाग (प्राच्य शास्त्र भण्डार) इलाहाबाद, **लालभाई दलपत भाई प्राच्य विद्या मन्दिर**, अहमदाबाद, **के.पी.जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट**, पटना, **बिहार राष्ट्रभाषा परिष्द्**, पटना, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, गिलगित मेन्युस्क्रिप्ट्स, काश्मीर, तथा **मूडबिद्री** (कर्नाटक) और **ग्वालियर** एवं **उज्जैन** के शोध-संस्थानों ने कुछ वर्गीकृत महत्वपूर्ण पाण्डुलिपि-सूचियाँ प्रकाशित की हैं।

इनके अतिरिक्त भी जैन सिद्धांत भास्कर, **आरा** (बिहार), अनेकान्त, **दिल्ली**, जैन-हितैषी, **बम्बई**, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, **वाराणसी**, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, पत्रिका **प्रयाग**, तथा अन्य कुछ शोध-पत्रिकाओं ने भी कभी-कभी अप्रकाशित पाण्डुलिपियों की सूचनाएँ प्रकाशित की थी। फिर भी, उनका बहुत बड़ा भाग अभी भी प्रकाशित होना शेष है।

विदेशों में भारतीय पाण्डुलिपियाँ

जैसा कि पूर्व में संकेत कर चुका हूँ कि समय-समय पर विदेशी पर्यटकों द्वारा विदेशों में भी पाण्डुलिपियाँ ले जाई गई हैं। यह भी सम्भव है कि प्राचीन काल के हमारे महान् सार्थवाह-श्रावक **चारुदत्त, नट्टल साहू, कोटिभट्ट श्रीपाल, भविष्यदत्त, जिनेन्द्रदत्त प्रभृति** भी अपने-अपने स्वाध्याय हेतु अपने साथ कुछ पाण्डुलिपियों को लेकर वहाँ के अपने साधर्मी भाईयों के स्वाध्याय हेतु तथा कुछ तीर्थंकर-मूर्तियों को भी उनके दर्शनार्थ वहाँ (विदेशों में) छोड़ आए हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। वर्तमान में सम्भवतः वही तीर्थंकर-मूर्तियाँ तथा उनके लिये निर्मित बहुसंख्यक विशाल जैन मन्दिरों के जीर्ण रूप उपलब्ध हो रहे हैं। फिलहाल अभी नये सर्वेक्षणों के अनुसार विदेशों में जो ताड़पत्रीय एवं कर्गलीय पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं, उनकी सूची यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं –

डॉ.वी.राघवन् के बाद जिसकी कि चर्चा मैं पीछे कर आया हूँ, उसके लगभग दो-ढाई दशक बाद **पं.हीरालाल जी दुग्गड़,** दिल्ली ने अपने कुछ व्यक्तिगत स्रोतों के आधार पर विदेशों में जैन-साहित्य[८६] (प्राच्य-पाण्डुलिपियों) का जो विवरण प्रकाशित किया है, उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। उनके अनुसार–

१) **लन्दन** में सहस्रों ग्रन्थागार हैं, जिनमें से अकेले एक ही ग्रन्थागार में लगभग १५०० हस्तलिखित भारतीय-पाण्डुलिपियाँ हैं, जो अधिकांशतया संस्कृत एवं प्राकृत में हैं। वहाँ की **इण्डिया आफिस लाईब्रेरी** में भी २०००० संस्कृत-प्राकृत की पाण्डुलिपियाँ हैं। अन्य ग्रन्थागारों में भी इसी प्रकार की अनेक पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

२) **जर्मनी** में लगभग ५००० ग्रन्थागार हैं, जिनमें से अकेले बर्लिन में ही अनेक ग्रन्थागार हैं। इनमें से केवल एक ही ग्रन्थागार में १२००० भारतीय पाण्डुलिपियाँ हैं। अन्यत्र की पाण्डुलिपियों का तो हिसाब लगाना ही कठिन है।

३) **अमेरिका** के **वाशिंगटन** तथा **बोस्टन** नगर में ही ५०० से अधिक ग्रन्थागार हैं। इनमें से मात्र एक ही ग्रन्थागार में ४० लाख पाण्डुलिपियाँ हैं। उनमें भी २० सहस्र पाण्डुलिपियाँ केवल संस्कृत एवं प्राकृत की हैं, जो **भारत** से ले जायी गई हैं।

४) **फ्रांस** में ११११ विशाल ग्रन्थागार हैं, जिनमें से **पेरिस** के एक **विविलियोथिक ग्रन्थागार** में ४० लाख ग्रन्थ हैं। उनमें से १२ हजार संस्कृत एवं प्राकृत की पाण्डुलिपियाँ हैं, जो भारत से ले जाई गयी हैं।

५) **रूस** में १५०० ग्रन्थागार हैं। उनमें से एक राष्ट्रीय ग्रन्थागार भी है, जिसमें ४० लाख ग्रन्थ हैं। उनमें से २२ हजार संस्कृत एवं प्राकृत की पाण्डुलिपियाँ हैं, जो भारत से ले जाई गई हैं।

---

८६. दे.मध्य–एशिया और पंजाब में जैनधर्म (दिल्ली, १९७९) पृ. ९८–९९

इसी प्रकार–**तक्षकोको** (मैक्सिको), **मुकातान** (प्राचीन मैक्सिको), **अस्त्राखान** (रूस), बुखारा, **पेकिंग** (चीन), **लोपांग** (चीन), **तुनहांग** (मध्य–एशिया), **खोतन, काशगर** एवं **तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल, भूटान, बर्मा, श्रीलंका** आदि देशों में हमारी अगणित पाण्डुलिपियाँ भरी पड़ी हैं, जिनकी सूचियाँ पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आ सकी हैं।

मास्को (रूस) के प्राच्य शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित जैन-पाण्डुलिपियों की एक सूची, जो अभी ज्ञात हो सकी है, वह निम्न प्रकार है -

१. आराधना (शिवकोटि कृत),
२. उपासकाचार (पूज्यपाद कृत) गृहस्थ धर्म का वर्णन करने वाला ग्रन्थ,
३. पदम-रामपुराण (सोमसेन कृत)
४. सम्यक्त्वकौमुदी-कथा (दो प्रतियाँ),
५. जैन-पूजा-विधि,
६. भावी-जिन तथा महावीर की स्तुतियाँ,
७. प्रश्नोत्तर-रत्नमाला (देवेन्द्र की टीका सहित),
८. सामायिक (संस्कृत एवं प्राकृत की प्रार्थनाओं का संग्रह),
९. त्रैविद्य-गोष्ठी-विद्वान ब्राह्मणों को जैनधर्म में दीक्षित करने के लिये उनसे शास्त्रार्थ का निर्देश देने वाली मुनिसुन्दर कृत एक सुन्दर रचना,
१०. आचार-प्रदीप (राजेश्वर-कृत) जैन-नीतिशास्त्र पर आधारित, जिसमें लोक-गाथाओं जैसी अनेक सुन्दर गाथाएँ वर्णित हों।
११. सुभाषितार्णव-अद्वितीय वैज्ञानिक महत्व की दुर्लभ हस्तलिखित प्रति, जिसमें १००० से अधिक श्लोक हैं।
१२. चित्रसेन पद्मावतीचरित (नयविजयकृत जैन काव्य) पद्मावती की सुविख्यात कथा का ५३६ श्लोकों में जैन रूपान्तर, सुप्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी-कृत पद्मावत की कथा का मूल स्रोत-ग्रन्थ। इनके अतिरिक्त भी लगभग १३० जैन-पाण्डुलिपियाँ रूस के विविध शास्त्र-भण्डारों में सुरक्षित हैं।
१३. कातन्त्र व्याकरण (सर्ववर्मकृत) की दुर्गसिंह कृत टीका की तीन प्रतियाँ
१४. वृहत्कथामंजरी, बड्ढकहा (पैशाची-प्राकृत) का संस्कृत-रुपान्तर
१५. नीतिसार एवं नीतिरत्न (वररुचि)
१६. वेतालपंचविंशतिका (गुणाढ्यकृत वृहत्कथा के अंशों का क्षेमेन्द्र द्वारा किया गया गद्य रुपान्तर)
१७. प्राकृतलक्षण (चण्डकृत) नेपाली हस्तप्रति
१८. १४० जैन हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ (इनके नामों के उल्लेख नहीं किये गये हैं)
१९. आचारांग सूत्र–एक हस्तप्रति
२०. कल्पसूत्र–की दो हस्तप्रतियाँ (इनमें से एक पर 'कल्पलता' नाम की टीका लिखित है)

२१. सूत्रकृतांग सूत्र–विभिन्न टीकाओं सहित
२२. आचारांग टीका (शीलांकाचार्य कृत)
२३. कल्पद्रुमकलिका (कल्पसूत्र पर टीका)
२४. दशवैकल्पिकावृहद्वृत्ति (हरिभद्र कृत) की कुछ प्रतियाँ
२५. परिशिष्ट पर्व हेमचन्द्र
२६. प्रवचनसारोद्धार की १६०६ गाथाएँ
२७. श्रुतिविचार–(सहज कुशल) संकलन ग्रंथ
२८. आचारप्रदीप (लोककथा संग्रह) रत्नशेखर
२९. ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों में प्राप्त कुछ पाण्डुलिपियाँ (जो सेण्ट्रल एशिया में उत्खनन में प्राप्त हुई)

विविध सन्दर्भो से ज्ञात ऐतिहासिक मूल्य की लुप्त-विलुप्त अथवा अनुपलब्ध कुछ प्रमुख जैन-पाण्डुलिपियों की सूची -

१. आचार्य कुन्दकुन्द कृत ८४ पाहुडों में से केवल समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, अष्टपाहुड, दशभक्ति, द्वादशानुप्रेक्षा एवं रयणसार के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ अनुपलब्ध,
२. समन्तभद्र कृत वैद्यशास्त्र एवं गन्धहस्तिमहाभाष्य,
३. गुणाढ्यकृत वड्ढकहा (पैशाची-प्राकृत में निबद्ध),
४. यतिवृषभकृत षट्करण स्वरूप,
५. आचार्य विमलसूरि कृत हरिवंसचरियं,
६. शिवार्यकृत सिद्धिविनिश्चय,
७. आचार्य सर्वनन्दि कृत लोक-विभाग,
८. श्रीदत्तकृत जल्पनिर्णय,
९. पूज्यपाद कृत सारसंग्रह, जिनाभिषेकपाठ, पाणिनीय व्याकरणन्यास एवं नवस्तोत्र,
१०. कूचि भट्टारक (अपरनाम श्रीनन्दि भट्टारक, ७वीं सदी से पूर्व) कृत महापुराण (शौरसेनी प्राकृतभाषा–निबद्ध)
११. अज्ञात-कर्त्तृक शौरसेनी-प्राकृत निबद्ध त्रिषष्ठिलक्षण (७वीं सदी से पूर्व),
१२. पात्रकेशरिकृत त्रिलक्षणक-दर्शन एवं शल्यतन्त्र,
१३. देवगुप्त (उद्योतनसूरि के समकालीन) कृत त्रिपुरुषचरित,
१४. अजितयश कृत तर्कशास्त्र सम्बन्धी कोई ग्रन्थ,
१५. शान्त या शान्तिषेण कृत उत्प्रेक्षालंकार के लिए प्रसिद्ध कोई ग्रन्थ,
१६. आदित्यकृत वर्धमानपुराण,
१७. राजर्षि प्रभंजन कृत उत्प्रेक्षालंकार के लिए प्रसिद्ध कोई ग्रन्थ,
१८. आचार्य विशेषवादी कृत न्याय-दर्शन का कोई ग्रन्थ,
१९. अपराजित (अपरनाम श्रीविजय) कृत दशवैकालिकसूत्र पर टीका-ग्रन्थ,

२०. सुमतिदेव कृत सुमति-सप्तक,
२१. सिद्धसेनकृत सन्मति-प्रकरण पर अपराजित सूरि कृत कोई टीका-ग्रन्थ,
२२. आचार्य विद्यानन्दिकृत विद्यानन्द-महोदय (तर्कशास्त्र पर लिखित कोई विस्तृत ग्रन्थ,
२३. अमरकीर्ति–(अपभ्रंश-षटकर्मोपदेश के लेखक) कृत-महावीरचरित, यशोधरचरित धर्मचरित-टिप्पण, सुभाषित-रत्ननीति, धर्मोपदेश-चूड़ामणि एवं ध्यान-प्रदीप,

इनके अतिरिक्त भी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी एवं कन्नड़ आदि की पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों में उल्लिखित अनेक ग्रन्थों की सूची इतनी विस्तृत है कि स्थानाभाव के कारण सभी के उल्लेख यहाँ करना सम्भव नहीं। इनमें से कुछ उपलब्ध हैं एवं कुछ अनुपलब्ध।

कौन करेगा उक्त अनुपलब्ध गौरव-ग्रन्थों की खोज ? भारत का सांस्कृतिक एवं साहित्यिक इतिहास तब तक अधूरा रहेगा, जब तक उन ग्रन्थकारों एवं उनकी पाण्डुलिपियों की खोज कर उनका बहुआयामी मूल्यांकन नहीं कर लिया जाता।

भारतीय वाङ्मय का ऐतिहासिक मूल्य का एक गौरव ग्रन्थ-कातन्त्र व्याकरण और देश-विदेश में बिखरी उसकी विविध पाण्डुलिपियाँ

प्राच्य भारतीय व्याकरण-विद्या के गौरव-ग्रन्थ के रूप में माने जाने वाले **कातन्त्र-व्याकरण** का प्रकाशन यद्यपि १६वीं सदी के प्रथम चरण में ही हो चुका था तथा जैन एवं जैनेत्तर पाठशालाओं में उसके अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था भी थी किन्तु धीरे-धीरे किन्हीं अदृष्ट कारणों से वह परम्परा बन्द हो गई और परवर्त्ती **पाणिनि-व्याकरण** ने उसका स्थान ले लिया।

कातन्त्र-व्याकरण -

किन्तु **कातन्त्र व्याकरण** की अपनी विशेष गरिमा है। इसकी प्राचीनता तथा विशेषताओं का मूल्यांकन करते हुए सुप्रसिद्ध व्याकरण शास्त्री **डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री** ने स्पष्ट कहा है कि–"कातन्त्र-व्याकरण" पाणिनि की परम्परा पर आश्रित न होकर उनसे पूर्ववर्त्ती–**"कलाप-व्याकरण"** पर आश्रित था। पाणिनि और कात्यायन दोनों ने ही **कलापी** और उनकी शिष्य-परम्परा का उल्लेख किया है।" आगे वे पुनः कहते हैं कि "भाष्य में भी महावार्त्तिक के साथ" **कालापक** शब्द आया है और उसके बाद तुरन्त ही **पाणिनीय-शास्त्र** की चर्चा है। इससे अनुमान होता है कि पाणिनि के पूर्व "कलापी" की कोई व्याकरण-शाखा थी। कातन्त्र-व्याकरण उसी पर आश्रित है [८७]।

कातन्त्र व्याकरण मयूरपिच्छी-धारी **शर्ववर्म** द्वारा विरचित है। **विष्णु-पुराण** (३/८) के अनुसार–**"दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छिधरो"** के कथन से स्पष्ट है कि शर्ववर्म दिगम्बर मुनि थे, जिसका पुरजोर समर्थन कातन्त्र-व्याकरण के महारथी विद्वान् **डॉ. जानकीप्रसाद द्विवेदी** [८८] ने भी किया है।

८७. पतंजलिकालीन भारत (पटना १९६३) पृ. ६६–६७
८८. कातन्त्र व्याकरण–प्रथम भाग की भूमिका

भारतीय व्याकरण शास्त्र के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ **पं.युधिष्ठिर मीमांसक** ने उक्त **शर्ववर्म** का काल पाणिनि से १५०० वर्ष-पूर्व माना है [८९]।

आचार्य **भावसेन त्रैविद्य** के अनुसार-तीर्थंकर ऋषभदेव की क्रमिक परम्परा से प्राप्त व्याकरणिक-ज्ञान को **कातन्त्र** अथवा **कौमार** या **कलाप** के नाम से संक्षिप्त सूत्र-शैली में सर्वप्रथम आचार्य **शर्ववर्म** द्वारा ग्रथित किया गया।" आकार में संक्षिप्त होने के कारण उसे **मुष्टि-व्याकरण** भी कहा गया है [९०]।

इस ग्रन्थ की लोकप्रियता इसी से जानी जा सकती है कि युगों-युगों से वह **काश्मीर**, **अफगानिस्तान**, **तिब्बत**, **भूटान**, **मंगोलिया**, **नेपाल**, **बर्मा** एवं **श्रीलंका** के विभिन्न पाठ्यक्रमों में निर्धारित था तथा उन-उन देशों की भाषा एवं लिपियों में इनकी विविध प्रकार की दर्जनों टीकाएँ भी वर्तमान में उपलब्ध हैं।

साहित्यिक इतिहासकारों के अनुसार १२वीं–१३वीं सदी में कातन्त्र-व्याकरण का अच्छा प्रचार था। **दुर्गसिंह** एवं **भावसेन-त्रैविद्य** ने उस पर वृत्तियाँ लिखकर कातन्त्र-व्याकरण के महत्व एवं उसके आन्तरिक सौन्दर्य को ही प्रकाशित नहीं किया, बल्कि उन्होंने व्याकरण के क्षेत्र में कातन्त्र-व्याकरण सम्बन्धी एक ऐसे "**कातन्त्र-आन्दोलन**" का सूत्रपात किया, जिसने कि बिना किसी सम्प्रदायभेद तथा आम्नायभेद के अनेक वैयाकरणों एवं साहित्यकारों को आकर्षित और समीक्षात्मक तथा विशदार्थक लेखन-कार्य हेतु प्रेरित किया। अपभ्रंश-कवि भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके।

पासणाहचरिउ (अद्यावधि अप्रकाशित-अपभ्रंश महाकाव्य) का लेखक **विबुध श्रीधर** (१२वीं सदी) जब **हरयाणा** से भ्रमण करने हेतु **दिल्ली** आया, तो उसे वहाँ की सड़कें वैसी ही सुन्दर लगी थीं, जैसी कि जिज्ञासुओं के लिये कातन्त्र-व्याकरण की **पंजिका-वृत्ति** [९१]। उस कातन्त्र-आन्दोलन का ही यह सुफल रहा कि पिछले लगभग ६–७ सौ वर्षों में देश-विदेशों में उस पर सैकड़ों विविध टीकाएँ आदि लिखी गई। एक प्रकार से यह काल कातन्त्र-व्याकरण के बहुआयामी महत्व के प्रकाशन का स्वर्णकाल ही बन गया था। इसकी सरलता, संक्षिप्तता, स्पष्टता, लौकिकता तथा उदाहरणों की दृष्टि से स्थानीयता तथा स्थानीय समकालीन लोक-संस्कृति के साथ-साथ उसमें भूगोल, अर्थनीति, राजनीति, समाजनीति आदि के समाहार के कारण वह ग्रन्थ निश्चय ही विश्व-साहित्य के शिरोमणि-ग्रन्थ रत्न के रूप में उभर कर सम्मुख आया है।

कातन्त्र अथवा कलापक (अर्थात् कलाप-व्याकरण) के प्राच्यकालीन अध्येता छात्रों के समूह को देखकर उसकी लोकप्रियता का अनुभव कर **महर्षि पतंजलि** (ई.पू.

---

८९. शिष्यहितान्यास-वृत्ति-भूमिका पृ.१४

९०. मुष्टि व्याकरणं नाम्ना कातन्त्र वा कुमारकम्।
कालापक प्रकाशात्म ब्रह्मणाभिधायकम्।। (कातन्त्र–रूपमाला पृ. १६७)

९१. पासणाहचरिउ (विबुधश्रीधर, अप्रकाशित) आद्य–प्रशस्ति– १/३/१०
यह ग्रन्थ इन पंक्तियों के लेखक द्वारा सम्पादित है तथा शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

तीसरी सदी) को अपने **व्याकरण-महाभाष्य** में स्पष्ट लिखना पड़ा था–"ग्रामे-ग्रामे काठके कालापकं च प्रोच्यते।" अर्थात् ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में कालापक (अर्थात् कातन्त्र-व्याकरण) का अध्ययन कराया जाता है।

प्रो. बेवर ने अपनी History of Sanskrit Grammar में कातन्त्र-व्याकरण का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि–"जो व्यक्ति **प्राकृत-भाषा** के माध्यम से **संस्कृत-भाषा** सीखना चाहते हैं, उनके लिये **कातन्त्र-व्याकरण** सर्वाधिक उपयोगी है [६२]।

उक्त कातन्त्र व्याकरण का सर्वप्रथम सम्पादन **डॉ.सर विलियम जोन्स** ने सन् १८०० ई. के आसपास किया था, जिसका प्रकाशन **रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल**, कलकत्ता द्वारा किया गया।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, उक्त ग्रन्थ का लेखक **शर्ववर्म** यद्यपि **जैनाचार्य** है [६३] किन्तु पन्थ एवं साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से परे रहने के कारण देश-विदेश में सर्वत्र उसकी प्रतिष्ठा हुई है। उसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि–उस पर देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं एवं शैलियों में इतनी अधिक टीकाएँ, वृत्तियाँ, भाष्य, चूर्णियाँ, अवचूरियाँ, अनुवाद तथा टीकाओं पर भी विविध टीकाएँ लिखी गई कि विश्व-साहित्य में शायद ही इतनी टीकाएँ एवं भाष्य आदि किसी अन्य ग्रन्थ पर लिखे गये हों। फिर भी दुर्भाग्य यह है कि इस कोटि के साहित्य का बहुल भाग अभी तक अप्रकाशित ही है, जो कि पाण्डुलिपियों के रूप में देश-विदेश के विभिन्न शास्त्र-भण्डारों में सुरक्षित है। उनमें से कातन्त्र सम्बन्धी कुछ पाण्डुलिपियों का सूचीकरण भी हुआ है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

मध्यप्रदेश एवं बरार (विदर्भ में)	–	१८
कारंजा (महाराष्ट्र)	–	७
राजस्थान	–	४०
गुजरात	–	४५
आरा	–	८
भोट (भूटानी) भाषा की	–	२३ टीकाएँ
तिब्बती भाषा की	–	१२ अनु.
	–	२३ टीकाएँ
मास्को (रूस) में	–	३ टीकाएँ (कुल ६१ टीकायें)

डॉ. जानकीप्रसाद द्विवेदी के सर्वेक्षण के अनुसार देश-विदेश में कुल मिलाकर अभी तक उसकी विविध प्रकार की लगभग २६८ पाण्डुलिपियों की सूचना मिली है।

---

६२. कातन्त्र–व्याकरण की शिष्यहितान्यास-टीका, भूमिका, पृ. १० (सम्पा. – डॉ.रामसागर शास्त्री)

६३. श्रीमच्छर्ववर्म जैनाचार्य–विरचितं कातन्त्र-व्याकरणम् (कातन्त्र-रूपमाला)

जैन पाण्डुलिपियों के प्रकाशन में-श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध-) संस्थान का योगदान

इस प्रसंग में मुझे यह कहते हुए विशेष प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि **गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान** (नरिया, वाराणसी) भी पाण्डुलिपियों के उद्धार में पीछे नहीं रहा। उसके संस्थापक-निदेशक श्रद्धेय पं. **फूलचन्द्र जी शास्त्री** को कहीं से **बुन्देली-भाषा** के गौरव-कवि **पं. देवीदास** की कुछ हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का एक गुटका उपलब्ध हुआ था। उनके तत्काल प्रकाशन की उनकी कितनी तीव्र इच्छा थी, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि **जनवरी १९७७** की कोरमकोर शीत-ऋतु में उसे लेकर स्वयं ही वे **आरा (बिहार)** पधारे और **डॉ. विद्यावती** को उन सभी पाण्डुलिपियों के सम्पादन एवं मूल्यांकन हेतु कृपापूर्ण आदेश दिया। विषय-वर्गीकरण की दृष्टि से वे समस्त पाण्डुलिपियाँ नौ खण्डों में विभक्त की गई और ३८८ पृष्ठों में **"देवीदास-विलास"** के नाम से सितम्बर १९९४ में उक्त वर्णी-संस्थान से प्रकाशित हुई।

उसके सम्पादन-प्रकाशन में भले ही कुछ विलम्ब हो गया, किन्तु विद्वानों ने उसे उच्च कोटि का प्रकाशन घोषित कर बड़ा सन्तोष व्यक्त किया।

महाकवि देवीदास की पाण्डुलिपियों का सम्पादन तो उक्त ग्रन्थ में समाहित हो गया किन्तु उसके विस्तृत तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक ६०६ पृष्ठीय शोध-ग्रन्थ पर डॉ. विद्यावती को **बी.आर.अम्बेडकर बिहार विश्व विद्यालय, मुजफ्फरपुर** द्वारा सन् १९९८ में **डी.लिट्** की उपाधि से भी सम्मानित किया गया। यह ग्रन्थ अद्यावधि अप्रकाशित है।

वस्तुतः पूज्य पण्डित जी अत्यन्त चिन्तित रहा करते थे कि उक्त महाकवि देवीदास के साहित्य की अनेक कारणों से उपेक्षा हुई है। इसी कारण उनकी चिन्ता को दूर करने तथा उनकी भावनाओं का आदर करते हुए उच्चस्तरीय शोध का भी उसे विषय बनाया गया और उसमें उक्त शानदार सफलता भी मिली।

यदि सहृदय पाठक-गण बुन्देली-भाषा की सरलता देखना चाहते हों, अध्यात्म की गहराई नापना चाहते हों, बुन्देली-भाषा की मिठास का रसास्वादन करना चाहते हों, यदि उसकी मृदुल छवि देखना चाहते हों, यदि दार्शनिक चिन्तनधारा की गम्भीरता में डुबकी लगाना चाहते हों, यदि मनोवैज्ञानिक चित्र-विचित्र रंगों के रंग में अपने चरित्र का पता लगाना चाहते हों, यदि जैन-रहस्यवाद की गरिमा देखना चाहते हों, विविध प्रकार की छन्दावली या लाक्षणिकताओं के दर्शन करना चाहते हों, तो प्रत्येक स्वाध्यायी और शोधार्थी के लिये उक्त **देवीदास-विलास** का अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

महाकवि देवीदास की स्थिति उसी प्रकार की थी, जिस प्रकार कि **सन्त कबीर** की। कबीर ताना-बाना बुनकर अपना भरण-पोषण करते थे। **पं.देवीदास जी** भी उसी प्रकार बंजी-भौरी [६४] करके अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण किया करते थे और रात्रि में अपना लेखन-कार्य किया करते थे।

६४. सिर एवं कंधों पर व्यापारिक सामग्रियों को लादकर देहातों-देहातों में पैदल चलकर बेचने को बुदेली भाषा में 'बंजी-भौरी' कहा जाता है।

कवि देवीदास की एक पाण्डुलिपि अद्यावधि अप्रकाशित ही है और वह है **आचार्य कुन्दकुन्द कृत प्रवचनसार का बुन्देली-हिन्दी में पद्यानुवाद**। देवीदास-विलास के प्रकाशन के बाद उसकी जीरोक्स प्रति जयपुर से उपलब्ध होने से वह छपने से रह गई है। अब देखें उस पाण्डुलिपि का भाग्य कब जागता है और कब एवं कहाँ से वह प्रकाशित हो पाती है ?

देवीदास-विलास के प्रकाशन के पूर्व भी उक्त वर्णी-संस्थान ने एक अप्रकाशित पाण्डुलिपि का प्रकाशन किया था, जिसका नाम है–**आचार्य भद्रबाहु, चाणक्य-चन्द्रगुप्त-कथा एवं राजा कल्कि वर्णन**। यह अपभ्रंश की ऐतिहासिक रचना महाकवि **रइधू** कृत है और उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें **यापनीय-संघ** की उत्पत्ति एवं **कान्तार-चर्या** की कथा भी प्रासंगिक रूप में मिलती है, जिसके कारण यह रचना बड़ी रोचक एवं चर्चित हुई। इसका सम्पादन पूज्य पं.फूलचन्द्र जी शास्त्री की प्रेरणा से **डॉ.राजाराम जैन** ने किया था, जिसका प्रकाशन वर्णी संस्थान से सन् १९८२ में हुआ था।

भौगोलिक दृष्टि से पाण्डुलिपियों का महत्व

इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही देश-विदेश के प्राच्यविद्याविदों ने प्राचीन भारतीय साहित्य के आधार पर प्राच्य भारतीय भूगोल का भी अध्ययन किया है। उस दृष्टि से वैदिक एवं बौद्ध-साहित्य का तो मूल्यांकन किया गया किन्तु जैन-साहित्य में वर्णित भूगोल अद्यावधि उपेक्षित ही बना रहा। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है–खोजी विद्वानों ने **कालिदास** कृत **मेघदूत** के **विरही-यक्ष** के दूत के मेघ के मार्ग तक का पता लगा लिया, जब कि द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल में **श्रमण**-संस्कृति एवं साधु-संघ की सुरक्षा की दृष्टि से अन्तिम श्रुतकेवली **आचार्य भद्रबाहु** के दक्षिण-भारत की इतनी लम्बी यात्रा के स्थल-मार्ग का पता आज तक लगाने का प्रयत्न नहीं किया गया। इस आवश्यकता की ओर किसी का ध्यान तक नहीं गया। आज तक इस तथ्य का पता नहीं चला कि उनके यात्रा का मार्ग क्या था और कहाँ-कहाँ उन्होंने अपने क्या-क्या स्मृति चिन्ह छोड़े ?

महाकवि कालिदास से लगभग ४–५ सौ वर्ष पूर्व हुए **आचार्य कुन्दकुन्द** के साहित्य में उपलब्ध भूगोल की भी उपेक्षा कर दी गई, जब कि उन्होंने राष्ट्रिय भावात्मक एकता एवं अखण्डता (National Unity and Emotional Integration) के प्रतीक अपने **निर्वाण-काण्ड-स्तोत्र** के माध्यम से पर्वतराज **हिमालय** के गर्वोन्नत भव्यमाल के समान **अष्टापद-कैलाश पर्वत** से लेकर **जम्मू एवं काश्मीर** तक तथा **गुजरात** के **गिरिनार**, दक्षिण के **कुन्थलगिरि**, पूर्वी-भारत के **सम्मेदगिरि**, दक्षिण-पूर्व की **कोटि-शिला** के चतुष्कोण के बीचों-बीच लगभग ४० प्रधान नगरों, तीर्थों, पर्वतों एवं नदियों के उल्लेख कर समकालीन भारतीय भूगोल पर अच्छा प्रकाश डाला है।

इस प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि सन् १९६२ में जब **चीन** ने भारत पर पहला आक्रमण किया था और हिमालय के कुछ भूभाग को उसने अपना **चीनी-क्षेत्र** घोषित किया था, तब अत्यधिक चिन्तित होकर तत्कालीन प्रधान मंत्री **पं. जवाहरलाल नेहरु** ने बहुत ही उच्च-स्वर में महाकवि **कालिदास** (५वीं सदी) के **कुमारसम्भव**-महाकाव्य (१/१) की–

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।।

नामक पंक्ति का उल्लेख कर उसे एक प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत कर तथा **चीन-सरकार** के दावे को गलत बताकर हिमालय के कण-कण पर युगों-युगों से भारत के स्वामित्व की घोषणा की थी, जब कि कालिदास के पूर्ववर्त्ती **आचार्य-कुन्दकुन्द** (ई. पू. १२) द्वारा किया गया **अष्टापद (कैलाश पर्वत)** का उल्लेख तो उक्त प्रसंग में ईसा-पूर्व काल से ही सम्पूर्ण हिमालय पर भारतीय स्वामित्व का सबल प्रमाण उपस्थित करता आ रहा है। किन्तु दुर्भाग्य, कि इस प्राचीन सबल प्रमाण की उपेक्षा की गई। इसका कारण क्या रहा होगा, यह अन्वेषण का विषय है। अभी कुछ समय पूर्व एक पाण्डुलिपि ऐसी भी दृष्टिगोचर हुई है, जिसमें **सुरेन्द्रकीर्ति** नामके एक भट्टारक की **रेशन्दीगिरि** से **श्रवणबेलगोल** तक की पैदल तीर्थयात्रा का वर्णन है। उक्त दोनों तीर्थों के मध्य में जितने भी जैन तीर्थ थे, जैसे **उदयगिरि-खण्डगिरि**, तथा **कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश** एवं **बिहार** के अधिकांश तीर्थक्षेत्रों की वन्दना कर उन्होंने उनका आँखों देखा संक्षिप्त वर्णन किया है। यह ऐतिहासिक पाण्डुलिपि अभी तक अप्रकाशित है।

उक्त भट्टारक का समय १८वीं सदी के आसपास है। जैन-तीर्थों के इतिहास की दृष्टि से उस पाण्डुलिपि का जितना महत्व है, भारतीय इतिहास की दृष्टि से भी उसका उतना ही महत्व है। अतः ऐसी पाण्डुलिपि का तत्काल प्रकाशन आवश्यक है, क्योंकि वह हमारे लिए उसी प्रकार महत्वपूर्ण दस्तावेज सिद्ध हो सकती है, जिस प्रकार कि **मेगास्थनीज, फाहियान, ह्यूनत्सांग, अलवेरुनी, फादर मांटसेर्राट** तथा **जॉन मरे** के यात्रा-वृतान्त। बहुत सम्भव है कि आज दिगम्बर जैन तीर्थों को लेकर दूसरों द्वारा जो नए-नए झगड़े खड़े किये जा रहें हैं, उनके समाधान में वह ग्रन्थ विशेष उपयोगी सिद्ध हो सके।

एतद्विषयक उपलब्ध श्वेताम्बर-साहित्य का अधिकांशतः मूल्यांकन हो चुका है किन्तु दिगम्बर जैन-साहित्य अभी तक उपेक्षित ही पड़ा हुआ है।

उत्तर-मध्यकालीन जैन पाण्डुलिपियों में उपलब्ध मलिकवाहण, मम्मणवाहण, दोहडोट्ट, पुक्खलावइ, हरिग्रहपुर, अहंगयाल, णाड, मेघकूडपुर, पुंडरीकिणी, बडपुर, सालिग्राम जैसे नगर अभी भी अपरिचित जैसे ही हैं, उच्चकप्प, प्रल्हादनपुर, कगडंकदुर्ग, नगरकोट्ट, एवं त्रिगर्त जैसे नगर भी अभी तक अपरिचित जैसे ही हैं। इन नगरों के इतिहास के पते लगाने की तत्काल आवश्यकता है, जो हमारी पाण्डुलिपियों से ही सम्भव है।

कुछ उत्तर-मध्यकालीन पाण्डुलिपियों से यह भी जानकारी मिलती है कि **कांगडा** (हिमाचल) के आसपास विशाल दिगम्बर तथा श्वेताम्बर जैन मन्दिर निर्मित्त थे किन्तु बाद में श्वेताम्बर-मन्दिर तो बच गया, किन्तु दिगम्बर-मन्दिर नष्ट कर दिया गया।

अपभ्रंश-पाण्डुलिपियों में वर्णित कुछ रोचक तथ्यः समस्यापूर्ति-परम्परा -

अपभ्रंश-साहित्य में समस्या-पूर्ति के रूप में कुछ रोचक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। इन समस्या-पूर्तियों के आयोजन राजदरबारों या सामान्य-कक्षों में हुआ करते थे। इनका रूप प्रायः वही था, जो आजकल के "इण्टरव्यू" (Interview) का है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के बाह्य-परीक्षण के तो अनेक माध्यम थे, किन्तु उसके काव्य-कौशल, ऋजुता, मृदुता, चतुराई, प्रतिभा, आशु-कवित्व, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि के परीक्षणार्थ **समस्यापूर्ति** की पद्धति प्रचलित थी। समस्यापूर्ति सम्बन्धी पद्यों से व्यक्ति के स्वभाव, विचारधारा, वाणी–माधुर्य, उसकी कुलीनता, परिवेश एवं वातावरण का भी सहज ही अनुमान लगा लिया जाता था।

महाकवि रइधू कृत **"सिरिवालचरिउ"** के एक प्रसंग [६५] के अनुसार, **कोंकणपट्टन-नरेश यशोराशि** की १६०० राजकुमारियों में से आठ हठीली एवं गर्वीली राजकुमारियों ने प्रतिज्ञा की थी कि वे ऐसे व्यक्ति के साथ अपना विवाह करेंगी, जो उनकी समस्याओं की पूर्ति **गाथा-छन्द** में करेगा। उनकी एक कठिन शर्त यह भी थी कि जो भी प्रतियोगी उनके उत्तर नहीं दे सकेगा, उसे शूली पर चढ़ा दिया जायेगा।

फलस्वरूप, हीनबुद्धि व्यक्तियों ने तो उसमें भाग लेने का साहस ही नहीं किया और जो प्रतियोगी अपनी हेठी बाँधकर भाग लेने आये भी, उन्हें शूली पर झूल जाना पड़ा।

चम्पापुर नरेश श्रीपाल अपनी यात्रा के समय जब उन राजकुमारियों का यह समस्त वृतान्त सुनता है, तब वह भी साहस बटोरकर अपना भाग्य आजमाने के लिये इस प्रतियोगिता में सम्मिलित होने हेतु चल पड़ता है। राजदरबार में सर्वप्रथम राजकुमारी **सुवर्णदेवी** उससे जिन समस्याओं की पूर्ति के लिए अनुरोध करती हैं, उनमें से दो के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। यथा –

(१) समस्या – गउ पेक्खंतह सव्वु। (अर्थात् सब कुछ देखते ही देखते नष्ट हो जाता है।)

पूर्ति – जोव्वण विज्जा संपयहं किज्जइ किं पि ण गव्वु।
जम रुट्ठइ णट्ठि एहु जगु **गउ पेक्खंतहु सव्वु**।।

अर्थात् यौवन, विद्या एवं सम्पत्ति पर कभी गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि इस संसार में यमराज जब रूठ जाता है, तब "सब कुछ देखते ही देखते नष्ट हो जाता है।"

(२) समस्या – पुण्णें लब्भइ एहु। (अर्थात् पुण्य से ही ये सब प्राप्त होते हैं।)

पूर्ति – विज्जा-जोव्वण-रूव-धणु-परियणु कय-णेहु।
बल्लहजण मेलावउ पुण्णें लब्भइ एहु।

अर्थात् संसार में विद्या, यौवन, सौन्दर्य, धन, परिजनों का स्नेह एवं प्रियजनों का संयोग ये सभी "पुण्य से ही प्राप्त होते हैं।"

६५. **सिरिवालचरिउ** (अद्यावधि अप्रकाशित) ८/६/१–८

इसी प्रकार अन्य हठीली राजकुमारियाँ भी श्रीपाल से कठिन से कठिन प्रश्न करती हैं किन्तु वह भी सहज स्वाभाविक एवं सटीक उत्तर देकर सभी का मन मोह लेता है।

इस प्रकार की समस्यापूर्तियों में पौराणिक, आध्यात्मिक तथा समकालीन सामाजिक एवं लौकिक सभी प्रकार के प्रसंग रहते थे। **श्रीपाल** चूँकि अपने शिक्षाकाल में गुरु-चरणों में बैठकर सभी विद्याओं में पारंगत हो ही चुका था, अतः राजदरबार की इस जटिल अन्तर्वीक्षा (Interview) में वह उत्तीर्ण हो गया और उन सभी हठीली एवं गर्वीली राजकुमारियों को जीत कर उनके साथ उसने विवाह रचा लिया।

बुन्देलखण्ड में यह परम्परा आज भी कुछ परिवर्तित रूप में देखी जाती है। सात फेरे पड़ने के बाद जब **वधु वर** के साथ जनमासे में ले आई जाती हैं, तो दोनों पक्षों के लोग वर-वधु को अपने मध्य में बैठा लेते हैं। उसी समय वर वधु से अनेक प्रकार के प्रश्न करता है और वधु अपनी योग्यतानुसार उनके उत्तर भी देती है। इसी प्रकार वधु भी वर से प्रश्न करती है। उसी प्रश्नोत्तरी से उपस्थित लोग वर-वधु की बौद्धिक चातुरी की परीक्षा कर उनके भविष्य को समझने का प्रयत्न करते हैं।

समाज में कवियों एवं लेखकों के लिए आश्रयदान

मध्यकालीन जैन-साहित्य के निर्माण का अधिकांश श्रेय श्रावक-श्राविकाओं, श्रेष्ठियों, राजाओं अथवा सामन्तों को हैं। उस समय श्रेष्ठिवर्ग एवं सामन्त, राज्य के आर्थिक एवं राजनैतिक विकास के प्रमुख कारण होने से राज्य में सम्मानित एवं प्रभावशाली स्थान बनाये हुए थे। समय-समय पर उन्होंने साहित्यकारों को प्रेरणाएँ एवं आश्रय-दान देकर साहित्य की बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं। मध्यकालीन पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियाँ इस प्रकार के सन्दर्भों से भरी पड़ी हैं। इन आश्रयदाताओं की अभिरुचि बड़ी सात्विक एवं परिष्कृत पाई जाती हैं। भौतिक-समृद्धियों एवं भोग-विलास के ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में रहकर भी वे धर्म, समाज, राष्ट्र, साहित्य एवं साहित्यकारों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को विस्मृत नहीं करते थे। **महामात्य भरत**, उनके पुत्र **नन्न, साहू नट्टल**, **साहू खेमसिंह** एवं **कमलसिंह संघवी** प्रभृति आश्रयदाता इसी कोटि में आते हैं।

''णायकुमारचरिउ'' **''जसहरचरिउ''** तथा **''तिसट्ठिमहापुराणपुरिसगुणालंकारु''** जैसे शीर्षस्थ अपभ्रंश-काव्यों के प्रणेता महाकवि **पुष्पदन्त** के **''अभिमानमेरु'', अभिमानचिन्ह** तथा **काव्यपिशाच** जैसे गर्वीले और अद्भुत विशेषण सचमुच ही सार्थक प्रतीत होते हैं। उनका साहित्यिक अभिमान एवं स्वाभिमान विश्व-वाङ्मय के इतिहास में अनुपम है। उनकी एक प्रशस्ति के अनुसार एक बार उन्होंने सरस्वती को भी चुनौती दे डाली थी और कहा था—"हे सरस्वती, मैं ही तुम्हें अपनी जिह्वा पर आश्रय दे सकता हूँ, अन्य नहीं। मुझे छोड़कर तुम जाओगी कहाँ ?"

एक राजदरबार में राजा द्वारा अपमानित हो जाने पर उस वाग्विभूति पुष्पदन्त ने अपने स्वाभिमान की रक्षा करने हेतु तत्काल ही अपना राज-निवास त्याग दिया था और

उसी दिन उस घमण्डी राजा की राज्य-सीमा छोड़कर जंगल में डेरा डाल दिया था। वहाँ निर्जन-वन में उन्हें एक वृक्ष के नीचे अकेला लेटा हुआ देखकर **अम्मइ** और **इन्द्र** नामक पुरुषों द्वारा उसका कारण पूछे जाने पर **पुष्पदन्त** ने स्पष्ट कहा था–"गिरि-कन्दराओं में घास-फूस खाकर रह जाना अच्छा, किन्तु दुर्जनों की टेढ़ी-मेढ़ी भौंहे सहना अच्छा नहीं। माता की कोख से जन्मते ही मर जाना अच्छा, किन्तु किसी राजा के भ्रूकुंचित नेत्र देखना और उसके कुवचन सुनना अच्छा नहीं, क्योंकि राजलक्ष्मी डुलते हुए चँवरों की हवा से उनके (राजाओं के) सारे गुणों को उड़ा देती है और अभिषेक के जल से उनके सारें गुणों को धो डालती हैं, उन्हें विवेकविहीन बना देती है और उन्हें मूर्ख बनाकर वह (राजलक्ष्मी) स्वयं ही दर्प से फूली रहती हैं। इसीलिए, राजदरबार को छोड़कर मैंने इस निर्जन वन में शरण ली है [६६]।"

राष्ट्रकूट-**राजा कृष्णराज** (तृतीय) के महामन्त्री **भरत** कवि पुष्पदन्त के आग्नेय स्वभाव को जानता था, फिर भी वह उन्हें उस निर्जन-वन से विनती करके अपने घर ले आया और सभी प्रकार का सम्मान एवं विश्वास देकर साहित्य-रचना के लिए उन्हें प्रेरित किया था।

"तिसट्ठिमहापुराणपुरिसगुणालंकारु" के प्रथम भाग की समाप्ति के बाद कवि जब सहसा ही कुछ खिन्न हो उठा, तब **भरत** ने कवि से निवेदन किया–"हे महाकवि, आज आप खिन्न क्यों हैं ? क्या काव्य-रचना में आपका मन नहीं लग रहा अथवा मुझसे कोई अपराध बन पड़ा है या फिर अन्य कोई कारण है ? आपकी जिह्वा पर तो सरस्वती का निवास है, फिर आप सिद्ध-वाणी-रूपी धेनु का नवरस युक्त क्षीर हम लोगों के लिये वितरित क्यों नहीं कर रहे हैं [६७]।"

भरत की इस विनम्र प्रार्थना एवं विनयशील स्वभाव के कारण फक्कड़ एवं अक्खड़ महाकवि पुष्पदन्त बड़ा प्रभावित हुआ और उसने बड़ी ही आत्मीयता के साथ भरत से कहा :– "हे भाई, मैं धन को तिनके के समान गिनता हूँ, मैं उसे नहीं लेता। मैं तो केवल अकारण प्रेम का भूखा हूँ और इसी कारण से तुम्हारे राजमहल में रुका हूँ [६८]। इतना ही नहीं, कवि ने उसके विषय में पुनः लिखा है:–"भरत स्वयं ही सन्तजनों की तरह सात्विक जीवन-व्यतीत करता है, वह विद्या-व्यसनी है, उसका निवास-स्थान संगीत, काव्य एवं गोष्ठियों का केन्द्र बन गया है। उसके यहाँ अनेक प्रतिलिपिकार ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करते रहते हैं। उसके घर में लक्ष्मी एवं सरस्वती का अपूर्व समन्वय है [६९]।"

कमलसिंह संघवी गोपाचल के तोमरवंशी राजा **डूँगरसिंह** का महामात्य था। उसकी इच्छा थी कि वह प्रतिदिन किसी नवीन काव्य-ग्रन्थ का स्वाध्याय किया करे। अतः वह राज्य के महाकवि **रइधू** से निवेदन करता है:–" हे सरस्वती,–निलय, शयनासन,

६६. महापुराण, १/३/४–५
६७. महापुराण, ३८/३/६–१०
६८. महाकवि पुष्पदन्त, पृ. ८१
६९. महाकवि पुष्पदन्त पृ. ८१.

हाथी, घोड़े, ध्वजा, छत्र, चँवर, सुन्दर-सुन्दर रानियाँ, रथ, सेना, सोना, चाँदी, धन-धान्य, भवन, सम्पत्ति, कोष, नगर, ग्राम, बन्धु-बान्धव, सन्तान, पुत्र, भाई आदि सभी मुझे उपलब्ध हैं। सौभाग्य से किसी भी प्रकार की भौतिक-सामग्री की मुझे कमी नहीं, किन्तु इतना सब होने पर भी मुझे एक वस्तु का अभाव सदा खटकता रहता है और वह यह है कि मेरे पास काव्यरूपी एक भी सुन्दर मणि नहीं है। उसके बिना मेरा सारा अतुल वैभव फीका-फीका लगता है। हे काव्यरत्नाकर, आप तो मेरे स्नेही बालमित्र हैं, अतः मैं अपने हृदय की गाँठ खोलकर आपसे सच-सच कहता हूँ, आप कृपाकर मेरे निमित्त एक काव्य-रचना कर मुझे अनुग्रहीत कर दीजिए[१००]।"

महाकवि रइधू ने संघवी की प्रार्थना स्वीकार कर **सम्मत्तगुणणिहाणकव्व** की रचना कर दी। उसकी प्रशस्ति में कवि ने उक्त संघवी द्वारा निर्मापित **गोपाचल-दुर्ग** की ८० फीट ऊँची **आदिनाथ की मूर्ति** की चर्चा की है, जिसका प्रतिष्ठा-कार्य स्वयं महाकवि रइधू द्वारा सम्पन्न हुआ था[१०१]।

हरयाणा के महाकवि **बिबुध श्रीधर** (१२वीं सदी) जब अपने **चंदप्पहचरिउ**[१०२] **(अपभ्रंश-महाकाव्य)** की रचनाकर कुछ शिथिलता का अनुभव करने लगे, तब उसे दूर करने के निमित्त वे भ्रमणार्थ **दिल्ली** आये थे। वहाँ उनकी भेंट विश्व प्रसिद्ध **सार्थवाह नट्टल साहू** से हुई। नट्टल ने अपने परिचय में कवि को बतलाया कि "मैंने दिल्ली में एक विशाल शिखरबन्द **आदिनाथ का मन्दिर** बनवाया है और बहुरंगी समारोह में मैने उस पर **पंचरंगी झण्डा** भी फहराया है। देश-विदेश में मेरी ४६ व्यावसायिक गद्दियाँ (Agencies for Trade and Commerce) हैं। मेरे पास किसी भी प्रकार की भौतिक सम्पदा की कोई कमी नहीं है। केवल कमी है तो एक ही बात की कि मेरे पास स्वाध्याय करने हेतु कोई सुन्दर ग्रन्थरत्न नहीं है। अतः कृपाकर आप मेरे निमित्त इसी आदिनाथ मन्दिर में बैठकर **पासणाहचरिउ** की रचना कर दीजिये।"

कवि ने नट्टल का अनुरोध स्वीकार कर उक्त चरित-काव्य का प्रणयन कर दिया। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, प्रस्तुत पासणाहचरिउ (की पाण्डुलिपि) की यह विशेषता है कि उसकी प्रशस्ति में १२वीं सदी की **दिल्ली** का आँखों देखा वर्णन किया गया है। उस समय दिल्ली में **कुतुबमीनार** का निर्माण नहीं हुआ था। किन्तु जब **कुतुबुदीन ऐबक** का वहाँ राज्य हुआ, तब उसने उस आदिनाथ के मन्दिर तथा उसके प्रांगण के मानस्तम्भ तथा समीपवर्ती अन्य अनेक मन्दिरों तथा कीर्तिस्तम्भ को तोड़-फोड़कर उसी सामग्री से **कुतुबमीनार** तथा **कुतुब्बुल-इस्लाम** नाम की एक विस्तृत मस्जिद का निर्माण कराया था। ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व का यह **पासणाहचरिउ** अभी तक अप्रकाशित है।

१००–१०१. सम्मत्तगुणणिहाणकव्व (अद्यावधि अप्रकाशित) आदि–प्रशस्ति
१०२. वर्तमान में अनुपलब्ध

कवियों के लिए सार्वजनिक सम्मान

अपभ्रंश-काव्य-प्रशस्तियों में विद्वान-कवियों के सार्वजनिक सम्मानों की भी कुछ चर्चाएँ उपलब्ध होती हैं। इनसे सामाजिक मानसिकता तथा उसकी अभिरुचियों का पता चलता है। **''सम्मत्तगुणणिहाणकव्व''** नामकी पाण्डुलिपि की प्रशस्ति से विदित होता है कि महाकवि **रइधू** ने जब अपने उक्त काव्य-रचना समाप्तिकी की और अपने आश्रयदाता **कमलसिंह संघवी** को समर्पित किया, तब संघवी जी इतने आत्मविभोर हो उठे कि उसकी पाण्डुलिपि को लेकर नाचने-गाने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने उक्त कृति एवं कृतिकार दोनों को ही राज्य के सर्वश्रेष्ठ शुभ्रवर्ण वाले हाथी पर विराजमान कर गाजे-बाजे के साथ सवारी निकाली और उनका सार्वजनिक सम्मान कर उन्हें बेशकीमत स्वर्णालंकार, द्रव्यराशि एवं वस्त्राभूषणादि भेंट-स्वरूप प्रदान किये थे [१०३]।

इसी प्रकार, एक अन्य वार्ता-प्रसंग से विदित होता है कि **''पुण्णासवकहा''** नामक एक अपभ्रंश-कृति की परिसमाप्ति पर उसके आश्रयदाता **साधारण साहू** को जब **वीरदास** नामक द्वितीय पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, तब बड़ी प्रसन्नता के साथ साधारण साहू ने महाकवि रइधू एवं उनकी कृति **''पुण्णासवकहा''** को **चौहानवंशी नरेश प्रतापरुद्र** के राज्यकाल में **चन्द्रवाडपट्टन** में हाथी की सवारी देकर सम्मानित किया था [१०४]।

जैन-साहित्य तथा जैन-पाण्डुलिपियों के लेखन में कायस्थ-विद्वानों का योगदान

जैन-साहित्य के विकास में जैनेतर विद्वानों का भी कम योगदान नहीं रहा। पाण्डुलिपियों के प्रतिलेखन-कार्य में अनेक **कायस्थ** विद्वानों के नाम उपलब्ध होते हैं। *मध्यकालीन भट्टारकों के वे बड़े विश्वस्त-पात्र थे* क्योंकि एक तो उनकी हस्तलिपि सुन्दर होती थी और वे यथानिर्देशानुसार कलात्मक ढंग से एकरूपता के साथ प्रतिलेखन-कार्य किया करते थे। दूसरी ओर प्रतिभा-सम्पन्न रहने के कारण वे काव्य-प्रणयन भी किया करते थे।

महाकवि रइधू के गुरु भट्टारक **यशःकीर्ति** के सान्निध्य में रहकर कार्य करने वाले पं. **थलु कायस्थ** का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। भट्टारक यशःकीर्ति के निर्देशानुसार पं. थलु कायस्थ ने **गोपाचल (ग्वालियर)** में रहकर अपभ्रंश भाषात्मक **सुकुमालचरिउ** (पं. विबुध श्रीधर कृत) तथा **भविष्यदत्तचरित** (संस्कृत) का प्रतिलिपि-कार्य किया था।

एक दूसरे कायस्थ पं. **पद्मनाभ कायस्थ** थे, जो संस्कृत के अच्छे कवि थे तथा जिन्होंने ६ सर्गों वाले १४६१ श्लोकों में यशोधरचरित-अपरनाम **दयासुन्दर-काव्य** की रचना की थी। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है तथा **जैन सिद्धान्त भवन, आरा (बिहार)** में उसकी पाण्डुलिपि सुरक्षित है। यह ग्रन्थ **भट्टारक गुणकीर्ति** के आदेश से तोमरवंशी **राजा वीरमदेव** के महामन्त्री **कुशराज** जैन के निमित्त लिखा गया था।

---

१०३. सम्मतगुण. ६/३४

१०४. पुण्णासवकहा (अन्त्य प्रशस्तिः)

इनके पूर्व भी कायस्थ-कुलोत्पन्न महाकवि **हरिचन्द** (८वीं सदी) हुए थे, जिन्होंने तीर्थंकर धर्मनाथ के महनीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर **धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य** की आलंकारिक रचना की थी, जिसे **पं.के.बी.पाठक** जैसे संस्कृत के अनेक महारथी विद्वानों ने **महाकवि कालिदास** के महाकाव्यों के समकक्ष घोषित किया था।

एक मध्यकालीन पाण्डुलिपि से यह भी जानकारी मिलती है कि **जोधपुर** (राजस्थान) के **खेड़ागढ़** के पास एक जैन मन्दिर के भूमिगृह में **जिनभद्रसूरि** की एक पाषाणमूर्ति स्थापित है, जिसे **उकेशवंशी कायस्थ** कुल वाले किसी श्रावक ने वि.सं. १५१८ में बनवाई थी [१०५]।

व्यक्तियों के नाम रखने की मनोरंजक घटना

अपभ्रंश-काव्य प्रशस्तियों में व्यक्तियों के नाम रखने सम्बन्धी कुछ मनोरंजक उदाहरण भी मिलते हैं। **''मेहेसरचरिउ''** नामक एक (अप्रकाशित) चरितकाव्य के प्रेरक एवं आश्रयदाता **साहू णेमदास** के परिचय-प्रसंग में कहा गया है कि उसके **पुत्र ऋषिराम** को उस समय पुत्ररत्न की उपलब्धि हुई थी, जिस समय वह पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा के क्रम में जिन-प्रतिमा पर तिलक अर्पित कर रहा था। इसी उपलक्ष्य में उस नवजात शिशु का नाम भी उसने **''तिलकू''** अथवा **''तिलकचन्द''** रख दिया था [१०६]।

पाण्डुलिपियों के प्रतिलिपि-कार्य का महत्व

१५वीं–१६वीं सदी की पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों को देखकर यह प्रतीत होता है कि समाज के नेताओं एवं कवियों को यह चिन्ता रहा करती थी कि पिछली सदियों में देश-विदेश के ईर्ष्यालुओं के द्वारा जिनवाणी की जो अपूर्व क्षति हुई है, उसे कैसे पूर्ण किया जाए ? यही कारण है कि उस समय के भट्टारकगण स्वयं तो साहित्य-प्रणयन करते ही रहे, लेखकों को आश्रय देकर उन्हें प्रशिक्षित एवं प्रेरित कर उनके द्वारा भी ग्रन्थों का प्रणयन तथा प्रतिलिपि-कार्य कराते रहते थे। उत्तर-भारत में यह परम्परा अनेक स्थानों पर मिलती है।

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, महाकवि **पुष्पदन्त** ने **महापुराण** की प्रशस्ति में स्पष्ट कहा है कि ''**भरत** एवं **नन्न** के राजमहल में साहित्यकारों के साथ-साथ प्रतिलिपिकार भी प्रतिलिपियों का लेखन-कार्य करते रहते है [१०७]''।

महाकवि **रइधू** ने ग्रन्थ-प्रणेता एवं ग्रन्थ के प्रतिलिपिक को समकक्ष स्थान दिया है। उन्होंने अपनी एक कृति में ग्रन्थ-प्रतिलिपि के निमित्त आर्थिक अनुदान देने की प्रवृत्ति को त्याग-धर्म एवं शास्त्रदान के अन्तर्गत माना है [१०८]।

---

१०५. भावनगर (गुजरात) के प्राचीन लेख संग्रह प्र.भा. (सन् १८८५) पृ. ७१

१०६. मेहेसरचरिउ (अपभ्रंश-महाकाव्य, अद्यावधि अप्रकाशित) १३/११/१३–१४

१०७. महापुराण – सन्धि २१ की पुष्पिका

१०८. ''धण्णकुमारचरिउ'' (जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर से प्रकाशित) २/७

पाण्डुलिपियों का दुर्भाग्य

हमारे विद्यागुरु तथा षट्खण्डागम शास्त्र की **धवला-टीका** के उद्धारक और उसके प्रथम सम्पादक **प्रो. डॉ. हीरालाल** जी कहा करते थे कि हम जब भी, जहाँ भी जावें, वहाँ के जैन-मन्दिरों के दर्शन कर वहाँ की परिक्रमा अवश्य किया करें, क्योंकि वहाँ प्रायः ही जिनवाणी की प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पाण्डुलिपियाँ, आधे या पूरे बोरों में भरकर उन्हें जल-समाधि देने के निमित्त रखी रहती हैं। समाज के लोग यह नहीं समझते कि प्राचीनाचार्यों की कठोर-साधना एवं परिश्रम से लिखित वे पुरानी पोथियाँ या पाण्डुलिपियाँ ही जैन समाज की असली धरोहर हैं, क्योंकि उनमें हमारे इतिहास एवं संस्कृति तथा आगम-सिद्धान्त, आचार तथा अध्यात्म सभी कुछ वर्णित रहते हैं।

उक्त डॉ. साहब जब **अमरावती (विदर्भ)** में प्रोफेसर थे, तभी वे एक गाँव में गए। वहाँ के जैन-मन्दिर के दर्शन किए और परिक्रमा करते समय उन्होंने वहाँ एक बोरे से झाँकते हुए सुन्दर लिपि वाले कुछ फटे-पुराने पन्नों को देखा। एक पन्ने को जब ध्यान से पढ़ा, तो वह जैन रहस्यवादी-काव्य से सम्बन्धित पृष्ठ निकला।

उन्होंने जिज्ञासावश पूरा बोरा वहीं उड़ेल दिया, तो उसमें से तुड़े-मुड़े पूरे ग्रन्थ के पन्ने ही मिल गए। वह ग्रन्थ **मुनि रामसिंह** कृत अपभ्रंश-भाषा में लिखित **''पाहुडदोहा''** था, जिसका उन्होंने बाद में सम्पादन-अनुवाद किया और जिसे **कारंजा (अकोला)** की जिनवाणी-भक्त जैन-समाज ने प्रकाशित किया। उसके तुलनात्मक अध्ययन से विदित हुआ कि **सन्त कबीर** का रहस्यवाद उक्त ग्रन्थ से प्रभावित था। वर्तमान में यह ग्रन्थ अनेक विश्व-विद्यालयों में पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है।

न जाने हमारे कितने ऐतिहासिक महत्व के ग्रन्थरत्न हमारी ही असावधानी तथा हमारे ही अज्ञान के कारण दीमक-चूहों के भोजन बन गए। कितने शास्त्रों को जलाकर विदेशी आक्रान्ताओं ने भोजन पकाया। विदेशी लोग कितने-कितने ग्रन्थ यहाँ से उठाकर ले गए ?

यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भारत सरकार के आग्रह पर **प्रो.डॉ.वी.राघवन्** ने एक बार विदेशों में सुरक्षित पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण किया था और अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि भारत की ताडपत्रीय एवं कर्गलीय लगभग ५०००० से ऊपर हस्तलिखित दुर्लभ अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ विदेशों में ले जाई गई हैं, जिनमें से अकेले **बर्लिन** में ही लगभग ३५००० जैन एवं जैनेतर पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

सन् १९७४–७५ के वीर निर्वाण भारती पुरस्कार-सम्मान ग्रहण करने के बाद जब मैं पूज्य मुनि **श्री विद्यानन्द** जी की सेवा में जैनबालाश्रम दरियागंज, **दिल्ली** में बैठा था, उसी समय **प्रो.डॉ.ए.एन.उपाध्ये, जर्मनी** के प्रसिद्ध विद्वान **डॉ.आल्सडोर्फ** को अपने साथ में लेकर आये। आल्सडोर्फ को दिगम्बर जैन साधु के साक्षात् दर्शन करने की तीव्र इच्छा थी। डॉ. उपाध्ये ने उनका परिचय **आ. विद्यानन्दजी** को देते हुए बतलाया कि डॉ. आल्सडोर्फ के पितामह एवं पिता जैन-साहित्य पर कार्य करते रहे और इन्होंने स्वयं भी सारा जीवन जैन-साहित्य की सेवा में व्यतीत कर दिया है। आचार्य बट्टकेर कृत

मूलाचार की प्राचीनतम मूल पाण्डुलिपि इनके (आल्सडोर्फ के) पास सुरक्षित है। ये उसी पर शोध-कार्य कर रहे हैं। मुनिश्री तथा उपाध्ये जी को इस बात का बड़ा दुःख भी हुआ कि मूल पाण्डुलिपि हमारे बीच न रहकर, वह सात समुद्र पार चली गई। किन्तु उन्होंने यह भी कहा कि "वह हमारे पास नहीं है, उसका हमें दुःख अवश्य है किन्तु यदि वह भारत में रहती, तो शायद ही लोग उसे इतनी सुरक्षा प्रदान कर पाते, जितनी सुरक्षा उसे **जर्मनी** में मिल रही है।

लगभग २०–२५ वर्ष पूर्व मुझे **पेरिस** (फ्रांस) से एक पार्सल मिला था। मैं आश्चर्य चकित रह गया कि पेरिस में ऐसा कौन सा सहृदय व्यक्ति है, जो मुझे जानता है, और जिसने यह उपहार भेजा है ? उसे खोलकर देखा, तो उसमें से निकली **महाकवि रइधू** कृत अपभ्रंश के **''श्रीपालचरितकाव्य''** की पेरिस में सुरक्षित पाण्डुलिपि की सुन्दर फोटो प्रति, जिसकी मैं एक लम्बे अरसे से खोज कर रहा था। प्रेषिका पेरिस की एक महिला-प्रोफेसर बलबीर थी। बात यह थी कि सन् १९६४–६५ में **रइधू** सम्बन्धी मेरा कोई लेख, जिसमें कि मैंने रइधू कृत अपभ्रंश के **श्रीपालचरित** को अनुपलब्ध घोषित कर दिया था, वह तथा मेरे द्वारा सम्पादित प्रकाशित रइधू कृत **अणथमिउकहा** की एक प्रति किसी प्रकार उस प्रोफेसर महिला के हाथ लग गई होगी, इसी लघु-पुस्तिका तथा मेरे लेख ने उसे बहुत प्रभावित किया और उसके आधार पर उसने स्वयं कुछ लेख भी लिखे। इन सभी सूचनाओं के साथ उसने श्रीपालचरित की उक्त फोटो-कापी (जिसकी पाण्डुलिपि पेरिस के शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित थी) मुझे भेजी और **आरा (बिहार)** आकर उसने मुझसे भेंट करने की अभिलाषा भी व्यक्त की थी।

आज हम कहते हैं कि हमारा **''गन्धहस्तिमहाभाष्य''** नामका ग्रन्थ खो गया है। अपभ्रंश-ग्रन्थों की प्रशस्तियों में उल्लिखित सैकड़ों कवि और उनके द्वारा विरचित हजारों ग्रन्थों के न मिलने से हम लोग सहज ही कह देते हैं कि वे नष्ट हो गए। बहुत सम्भव है कि समय के फेर से तथा हमारी असावधानी से कुछ ग्रन्थ नष्ट भी हो चुके हों, किन्तु मुझे विश्वास है कि अधिकांश ग्रन्थ नष्ट नहीं हुए होंगे। जैसा कि मैं पूर्व में कह चुका हूँ कुछ ग्रन्थ विदेशों में विशेषकर **जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल, मिस्र, ईरान** तथा दक्षिण एवं मध्य एशियाई देशों में सुरक्षित होंगे, उनकी खोज करना आवश्यक है।

वर्तमान में हमारे समाज के अनेक श्रीमन्त, धीमन्त एवं भट्टारकगण घनी-घनी *विदेशयात्राएँ कर रहे हैं। यदि वे अपने भ्रमण-कार्यक्रमों में से एक कार्यक्रम विदेशों में* संग्रहीत जैन-पाण्डुलिपियों का पता लगाकर उनका विवरण भी समाज को लाकर देते रहें, तो वह जिनवाणी की बड़ी भारी सेवा मानी जायेगी।

हमारे यहाँ ही देश के कोने-कोने में जैन-मन्दिरों एवं व्यक्तिगत संग्रहालयों में अगणित जैन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं, जिनका पूरा लेखा-जोखा अभी तक नहीं हो पाया है। क्या ही अच्छा हो कि प्रकाशित एवं उपलब्ध ग्रन्थों को बार-बार प्रकाशित करते रहने की अपेक्षा अप्रकाशित ग्रन्थों की खोज, सूचीकरण, सुरक्षा तथा आधुनिक **वैज्ञानिक पद्धति**

से उनका सम्पादन, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य देश-विदेश की भाषाओं में अनुवाद तथा मूल्यांकन के साथ प्रकाशित की जावें तथा लागत मूल्य पर उनकी बिक्री की जाए, तो जिनवाणी की सुरक्षा एवं प्रचार-प्रसार तो होगा ही, उन्हें विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्य-ग्रन्थों के रूप में भी स्वीकृत कराया जा सकेगा। विदेशों में जैन-साहित्य की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति भी इस माध्यम से हो सकेगी।

पाण्डुलिपियों के लेखकों द्वारा दी गई चेतावनियाँ तथा उनकी विनम्र प्रार्थनाएँ -

पाण्डुलिपियों के लेखकों के सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ रहती थीं। जैसे-दुर्लभ रहने वाली लेखनोपकरण-सामग्रियों को उपलब्ध करना, प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था, एकान्त, सुशान्त-वातावरण, पारिवारिक भरण-पोषण की सन्तोषजनक व्यवस्था तथा पाण्डुलिपियों की दीमकों, चूहों अथवा मौसमी कुप्रभावों से उनकी सुरक्षा के साधनों आदि की सुलभता आदि, जिससे वे मनोयोग पूर्वक प्रतिलिपि-लेखन कार्य कर सकें। यह विषय अर्थार्जन की मनोवृत्ति से नहीं बल्कि जिनवाणी की सुरक्षा की भावना से किया जाता था। यह कार्य निश्चय ही धैर्यसाध्य, व्ययसाध्य एवं कष्टसाध्य होता था। जिस विषय की पाण्डुलिपि का वे प्रतिलिपि-कार्य करते थे, उस विषय, उस भाषा, उसकी लिपि एवं उसके व्याकरण का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता रहती थी, तभी प्रतिलिपि-कार्य प्रामाणिक भी हो पाता था। इस कार्य में सत्यनिष्ठा, श्रद्धा-भावना तथा समर्पण-भाव की भी अनिवार्यता रहती थी, तभी वह कार्य सफल भी हो पाता था। प्रतिलिपि-कार्य-समाप्ति के बाद उन्हें उससे ऐसी ममता हो जाती थी कि उसकी सुरक्षा के निमित्त वे अपने पाठकों को निरन्तर ही चेतावनी देते अथवा विनम्र प्रार्थना करते हुए कहा करते थे–

भग्नपृष्ठिकटिग्रीवा भग्नदृष्टिरधोमुखः।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत्।।१।।

अर्थात् इस पाण्डुलिपि के प्रतिलिपिकरण में मेरी पीठ, कमर एवं गर्दन टूट गई है, झुककर तथा नीचा मुख किये रहने के कारण मेरी दृष्टि में दोष उत्पन्न हो गये हैं और आँखें पथरा गई हैं। कष्ट-पूर्वक यह शास्त्र लिख पाया हूँ। अतः हे पाठकगण, इसकी प्रयत्न पूर्वक सुरक्षा करते रहियेगा, यही मेरी विनम्र प्रार्थना है। तथा–

तैलाद् रक्षेत् जलाद् रक्षेत् रक्षेत् शिथिल बन्धनात्।
परहस्ते न दातव्यो एवं वदति पुस्तिका।।२।।

अर्थात् हे भाई, कष्ट पूर्वक लिखी गयी इस पाण्डुलिपि की तैल एवं जल से रक्षा करते रहना। इसे ढीला-ढाला भी मत बाँधना और दूसरे असावधान या अविवेकीजनों के हाथों में भी इसे मत देना। बस, इस प्रतिलिपि (तथा इस प्रतिलिपिकार) का आपसे यही विनम्र निवेदन है। क्योंकि–

लेखनी-पुस्तिका-दारा परहस्ते गता गता।
कदाचिद् पुनरायाता लष्टा भृष्टा च चुम्बिता।।३।।

अर्थात् हे भाई, ये तीन वस्तुएँ अन्यन्त महत्वपूर्ण है—लेखनी, पुस्तिका एवं दारा। **यदि** ये दूसरों के हाथों में चली गई, तो फिर उनके वापिस होने की कोई सम्भावना नहीं। यदि वापिस लौट कर आती भी हैं, तो लष्ट-पष्ट (लुंज-पुंज) भृष्ट एवं चुम्बित होकर ही। अतः इन तीनों को तो पराए हाथों में देना ही नहीं चाहिए।

यह तो पीछे कहा ही जा चुका है कि प्रतिलिपिकार निरन्तर ही सत्यनिष्ठ रहते थे। अतः वे अपनी प्रतिलिपि के अन्त में अनजाने में होने वाली भूल-चूक की भी सत्यमन से क्षमा-याचना कर लेते थे। यथा—

यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते।।४।।

अर्थात् मूल पुस्तक में मैंने जैसा-जैसा शुद्ध या अशुद्ध पाठ देखा-पढ़ा, वैसा ही मैंने भी लिख दिया है। यदि अनजाने में अशुद्ध लिखा गया हो, तो मुझे आप लोग कोई **दोष** मत दीजियेगा और भी—

अदृष्टदोषान् मतिविभ्रमाद्वा यदर्थहीनं लिखितं मयाऽत्र।
तत्सर्वमार्यैः परिशोधनीयं कोपं न कुर्यात् खलु लेखकस्य।।५।।

अर्थात् अनजाने में अथवा मति के विभ्रम के कारण मैंने यदि इस पाण्डुलिपि **में** कुछ अर्थहीन पद-वाक्य लिख दिये हों, तो हे आर्यजन, उनका आप संशोधन कर लीजियेगा। मुझ मतिहीन प्रतिलिपिकार-लेखक पर क्रोधित मत होइयेगा।

पाण्डुलिपियों की सुरक्षा कैसे की जाए ?

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, काल के दुष्प्रभाव से सहस्रों की संख्या में हमारी पाण्डुलिपियाँ पहले ही नष्ट-भ्रष्ट हो गईं या विदेशों में ले जाई गईं। अतः उनकी तो अब स्मृति ही शेष रह गई है। **गन्धहस्ति-महाभाष्य** जैसे अनेक महनीय ग्रन्थ भी सम्भवतः उसी चपेट में आकर हमारी दृष्टि से ओझल होते गए हैं।

अब विचार यह करना है कि राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, हरयाणा, बुन्देलखण्ड, दिल्ली, आरा, कारंजा एवं कलकत्ता आदि के शास्त्र-भण्डारों तथा भारत के कोने-कोने में व्याप्त प्राचीन जैन मन्दिरों तथा कुछ व्यक्तिगत संग्रहालयों में सुरक्षित पाण्डुलिपियों की सुरक्षा कैसे हो तथा उनमें अन्तर्निहित ज्ञान-निधि से सभी लोग कैसे लाभान्वित हों ? हमारी दृष्टि से उसके लिए कुछ उपाय इस प्रकार किये जा सकते हैं—

१. अखिल भारतीय स्तर के सर्व-सम्मत संविधान के अन्तर्गत एक ऐसी केन्द्रिय-समिति का गठन किया जाय, जिसके निर्देशन में कुछ विशेषज्ञ विद्वान् भारत-भ्रमण कर **प्राच्य शास्त्र** भण्डारों तथा प्राचीन जैन मन्दिरों एवं अन्यत्र सुरक्षित पाण्डुलिपियों तथा उनकी सुरक्षा-प्रणाली का अध्ययन करें और अपने सुझाव दें कि सभी शास्त्र-भण्डारों की क्या-क्या **समस्याएँ हैं और उनमें** सुरक्षित पाण्डुलिपियों की उपयोगिता अधिक से अधिक **कैसे बढ़ाई जा सकती है।**

२. केन्द्रिय-समिति एक ऐसा ध्रौव्य फण्ड तैयार करे, जिससे यत्र-तत्र अव्यवस्थित रूप में पड़ी हुई पाण्डुलिपियों का योग्य विशेषज्ञों द्वारा सूचीकरण एवं मूल्यांकन कराया जा सके।

३. यदि आवश्यक हो तो केन्द्रिय समिति द्वारा आर्थिक दृष्टि से विपन्न किन्तु महत्वपूर्ण दो-तीन समीपवर्त्ती शास्त्रभण्डारों को मिलाकर एक सुविधा-सम्पन्न स्थान पर स्थापित कर दिया जाए तथा उसे अत्याधुनिक वैज्ञानिक उपकरण-जैसे एक्सहास्ट पंखे, फायरप्रूफ अल्मारियाँ, पाण्डुलिपियों के कागजों का स्थायीकरण तथा कमरों को वातानुकूलित रखने के उपकरण आदि प्रदान कराए।

४. अभी तक यह देखा गया है कि जो भी सूचीपत्र तैयार किए गए हैं, उनमें पाण्डुलिपियों के विवरण प्रस्तुत करने की पद्धति में एकरूपता नहीं है; कहीं-कहीं उनका मूल्यांकन भी वैज्ञानिक-पद्धति से नहीं हो पाया है। इससे शोधार्थियों को उनका पूरा लाभ नहीं मिल पाता। अतः एक निश्चित योजना के अन्तर्गत प्राथमिकता के आधार पर पाण्डुलिपियों का विषय-वर्गीकरण तथा मूल्यांकन कर उनके विधिवत् प्रकाशन की व्यवस्था कराई जाए।

५. पाण्डुलिपियों की सुरक्षा के लिए वर्तमान की अस्त-व्यस्त परिस्थितियों, तथा उनसे भविष्य में कुछ अनिष्टों की परिकल्पना करते हुए यह अनिवार्य सा हो गया है कि समाज अधिक से अधिक जागरूक बने तथा स्वायत्तता एवं एकाधिकारी बने रहने की संकीर्ण मनोवृत्ति से ऊपर उठकर जिनवाणी के हित में उसकी ऐसी व्यवस्था करें कि अभी जितनी भी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं, उनमें से प्राथमिकता के आधार पर सभी की माइक्रोफिल्मिंग कराकर देश के हर प्रमुख शास्त्र-भण्डार में उनकी १—१ प्रति सुरक्षित करा दी जायें, जिससे कि किसी एक स्थान की पाण्डुलिपि के गुम हो जाने अथवा नष्ट-भ्रष्ट होने पर वह दूसरे शास्त्र-भण्डार से उपलब्ध हो सके, जैसा कि मध्यकाल में **कर्नाटक** की यशस्विनी महिला **अत्तिमव्वे** ने तथा **षट्खण्डागम** की धवला आदि टीकाओं के नागरी लिप्यन्तरण को उनके प्रकाशन के पूर्व देश के प्रमुख प्राच्य-शास्त्रागारों में सुरक्षा की दृष्टि से भेज दिया गया था।

६. केन्द्रिय समिति यह प्रयत्न करे कि विश्वविद्यालयों में संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में या तो पाठ-सम्पादन और पाठालोचन सम्बन्धी स्नातकोत्तर विभागों की स्थापना करावे अथवा उनमें फिलहाल २००—२०० अंकों का एक ग्रूप ऐसा रहे, जिसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल एवं हिन्दी की जैन पाण्डुलिपियों के अध्ययन एवं पाठालोचन के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था रहे। ऐसे छात्रों को छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी की जाये। सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राओं के उत्साहवर्धन के लिए केन्द्रिय-समिति स्वर्णपदक प्रदान करने की भी व्यवस्था करें।

७. यदि कोई छात्र-छात्रा किसी पाण्डुलिपि का एम.ए.स्तर का लघु शोध प्रबन्ध (Dissertation) तैयार करना चाहे तो उसके लिए विशेष शोध-छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाए। जो छात्र-छात्रा पी.एच.डी. एवं डी.लिट् स्तर की उपाधि के लिए किसी विश्व-विद्यालय

से किसी अप्रकाशित जैन-पाण्डुलिपि का सम्पादन, अनुवाद एवं समीक्षा करना चाहे, तो उसे आकर्षक शोध-छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाए।

८. केन्द्रिय समिति स्वयं भी एक शोध-संस्थान की स्थापना करें, जो किसी विश्वविद्यालय से मान्यता-प्राप्त हो, जिसमें विविध स्तरों की पाण्डुलिपियों के अध्ययन, अध्यापन एवं शोध की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक व्यवस्था हो। रजिस्टर्ड रहने से उसके लिए प्रान्तीय तथा केन्द्रिय सरकारों से भी आर्थिक सहायता मिल सकेगी।

रजिस्टर्ड होने के कारण उक्त संस्थान को **यू.जी.सी.** से विविध-योजनाओं के लिए उत्साहवर्धक आर्थिक अनुदान भी मिल सकेगा।

यह तय है कि उक्त कार्य अत्यन्त व्यय-साध्य, धैर्य-साध्य एवं समय-साध्य है तथा उसे कोई एक संस्था या व्यक्ति पूरा नहीं कर सकता। यह कार्य तो सभी के सम्मिलित सहयोग से ही सफल हो सकता है। किन्तु हमारा जैन-समाज एक सुसंस्कृत, पुरुषार्थी एवं समृद्ध समाज है। वह प्रतिवर्ष नए-नए मन्दिर बनाने, मूर्ति-प्रतिष्ठा कराने तथा गजरथ चलाने में लाखों लाख रुपए खर्च करती है। प्रत्येक नगर एवं ग्राम का जैन *समाज यदि प्रति दो वर्षों में एक-एक पाण्डुलिपि के प्रकाशन का जिम्मा ले ले,* अथवा गजरथ, मन्दिर-निर्माण एवं वेदी-प्रतिष्ठा कराने वाले अपने-अपने बजट में से १–१ पाण्डुलिपि के प्रकाशन की भी उसी खर्च में से गुंजाइश निकाल लें, तो जिनवाणी के उद्धार में काफी सहायता मिल सकती है और हम अपनी परम आराध्य जिनवाणी की जीर्ण-क्षीर्ण पाण्डुलिपियों की कुछ सुरक्षा कर सकते हैं।

यह भी परमावश्यक है कि समाज में प्रतिदिन स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति बढ़े, अपने-अपने घरों में जैन-ग्रन्थों को खरीदकर छोटा सा ग्रन्थागार बनायें तथा शादी-विवाह पर तथा अन्य अवसरों पर बर्तनों एवं मिठाईयों के बदले जैन-ग्रन्थों को भेंट-स्वरूप दें तो उससे प्रकाशकों, लेखकों तथा सम्पादकों का भी उत्साहवर्धन होगा। इस प्रकार यह प्रवृत्ति भी जिनवाणी के उद्धार एवं प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध होगी।

पाण्डुलिपियों की खोज जितनी कठिन है, उससे भी अधिक कठिन है उनका प्रकाशन

प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज जितनी कठिन है, उससे अधिक कठिन है उनका प्रतिलिपि-कार्य और उससे भी द्विगुणित कठिन कार्य है उसका अध्ययन, सम्पादन, अनुवाद एवं तुलनात्मक समीक्षा-कार्य और उसके प्रकाशकों की खोज तो अत्यन्त दुरूह है ही। पाण्डुलिपियों पर कार्य करने के लिये इन सब कठिनाइयों से जूझना पड़ता है।

पाण्डुलिपियों के संशोधन-कार्य में एकाग्रता एवं एकरसता की अनिवार्यता है। ४–५ घण्टे की एक लम्बी एकाग्र बैठक के बिना कुछ भी कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। पाण्डुलिपि-सम्बन्धी कार्यों में संलग्न व्यक्ति प्रायः असामाजिकों की कोटि में आने लायक बन जाता है। इस दिशा में कार्य करने वाले प्रातः स्मरणीय मुनि पुण्यविजयजी, मुनि कल्याण विजयजी, मुनि जिनविजय जी, पं. नाथूराम प्रेमी, पं. जुगलकिशोर मुख्तार, प्रो. डॉ. हीरालाल जी, प्रो. डॉ. ए. एन . उपाध्ये, पं.फूलचन्द्र जी सि.शा. पं. कैलाशचन्द्र जी,

पं. महेन्द्रकुमार जी, पं. हीरालाल जी शास्त्री, पं. लालबहादुर जी शास्त्री, साहित्याचार्य पं.पन्नालाल जी, पं.परमानन्द जी, डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, पं. सुन्दरलालजी, पं. दरबारी लाल कोठिया, डॉ.कस्तूरचन्द्र जी काशलीवाल, डॉ. राजाराम जैन, डॉ. देवेन्द्र शास्त्री, डॉ.विद्यावती जैन आदि जिनवाणी-समर्पित विद्वानों ने एकरस होकर साधनाभावों में भी जो शाश्वत्-मूल्य के कार्य किये, उनसे जिनवाणी एवं समाज की प्रतिष्ठा शिखराग्रोन्मुख हुई है। भले ही उन्हें आज जैसे पुरस्कार नहीं मिले, प्रशस्ति-पत्र नहीं मिले, फिर भी उन्होंने उनकी परवाह किये बिना ही निरपेक्ष-भाव से जो निरुपम-कार्य किये और उससे उन्हें जो स्थायी आत्मसुख, धवलयश एवं कीर्ति मिली, वही उनके लिये सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार हैं। शाश्वत-कोटि के उनके श्रमसाध्य शोध-कार्य अगली पीढ़ी के लिये प्रकाश-स्तम्भ बनकर मार्ग-दर्शन करते रहेंगे, इसमें संदेह नहीं।

सरस्वती-पुत्र की शताब्दी-वर्ष की पुण्य-स्मृति में -

श्रद्धेय पूज्य **पं.फूलचन्द्र जी सिद्धान्त-शास्त्री** का यह शताब्दी-वर्ष है। इस पावन-प्रसंग पर उनका गुणानुवाद करने में किस सहृदय विद्वान् को प्रसन्नता का अनुभव नहीं होगा ?

वे ज्ञान के ऐसे उज्ज्वल दीपक थे, जिन्होंने उसे निरन्तर प्रज्ज्वलित बनाए रखने के लिये अपनी युवावस्था की समस्त ऊर्जा-शक्ति की आहुति दे दी थी। स्वाभिमान की सुरक्षा के लिये जिये, भले ही उन्होंने स्थायी नौकरी छोड़कर परिवार को भूखा रखना पसन्द किया, लेकिन अपमानित होकर सुख-सुविधाएँ प्राप्त करना उन्होंने कभी पसन्द नहीं किया। उनकी यह मनस्विता, उनका यह स्वाभिमान-प्रेम, अपभ्रंश के महाकवि **पुष्पदन्त** के स्वाभिमानी-जीवन का बरबस स्मरण करा देता है।

उन्होंने जीवन भर अभावों का जीवन जिया किन्तु निराशा की रेखाएँ कभी भी अपने जीवन में न उभरने दीं और ज्ञान का दीपक निरन्तर जलाये रखा। **श्री धवल, जय-धवल तथा महाधवल-टीका** जैसे अति दुरूह टीका-ग्रन्थों के सम्पादन-कार्य के अतिरिक्त अन्य दर्जनों मौलिक-ग्रन्थ उसके साक्षात् उदाहरण हैं।

ऐसे प्रातः स्मरणीय सरस्वतीपुत्र की पावन-स्मृति में उनके प्रिय विषय-प्राच्य-पाण्डुलिपियों के विषय में मुझे आज अपने विचार व्यक्त करने का सुअवसर मिला, इसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ तथा तद्विषयक अपनी यह भाषण-माला मैं उन्हीं की पावन-स्मृति में सादर समर्पित करता हूँ।

सन् १९५६ से मैंने परमादरणीय प्रो.डॉ.वासुदेवशरण जी अग्रवाल, पं.हजारीप्रसाद जी द्विवेदी, पं.बलदेव उपाध्याय, पं.दलसुख मालवणिया, पं.फूलचन्द्र जी सि.शा., प्रो.डॉ. हीरालाल जी एवं डॉ.ए.एन.उपाध्ये जी की प्रेरणा से पाण्डुलिपियाँ के क्षेत्र में अपने कदम रखे थे। प्रारम्भ में तो मैंने कठिनाई का अनुभव किया किन्तु बाद में एतद्विषयक रुचि बढ़ती गई और आज मैं जो कुछ भी बन सका, यह सब उन्हीं पूज्य गुरुजनों के आशीर्वाद

का प्रसाद है। अपने अध्ययन एवं अनुभूत निष्कर्षों को ही मैंने अपनी इस भाषणमाला में प्रस्तुत किया है। आप सभी ने उन्हें ध्यान पूर्वक सुना, इसके लिए मैं आप सभी का अत्यन्त आभारी हूँ।

— राजाराम जैन

दिनांकः सितम्बर २६-३०, २००१
श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
वाराणसी - २२१ ००५

शब्दानुक्रमणिका

अंगलिपि (लिपि) —१२
अंगुलीयलिपि —१२
अंबादेवी —५६
अकबर (मुगल सम्राट) — ५०, ५१
अकबर नगर — ४७
अकलंक (आचार्य) — २६, ३२
अकोला — ७६
अक्खरपुट्ठिया (लिपि) — १३
अगरु — ५८
अग्गल (कवि) — २६
अजमेर — २
अजितयश (तार्किक-दार्शनिक) — ६३
अजितसेन मुनि — ३०, ३४
अर्जुनदेव (राजा) — ४२
अर्ज्जदि (फारसी) — ५६
अड्यारलाइब्रेरी — ६०
अणंगचरिउ (अपभ्रंश-काव्य) — ५६
अणथमिउकहा — ७७
अणुपेहा — ५६
अतिसुखवादनिक (समाज कल्याण पदाधिकारी) — २७
अत्तिमव्वे (एक आदर्श कन्नड़ महिला) — २६, ३३, ८०
अध्याहारिणी लिपि — १३
अनंगपाल (दिल्ली का तोमर राजा) — ४२, ४३
अनहिलवाड़ (नगर) — ४१
अनिमित्ती लिपि — १२
अनुद्रुतलिपि — १२
अनुराग (कवि) —४४
अनुराधापुर (सिंघल देश का एक नगर) — १८
अनुलोम लिपि — १२
अनेकान्त — ६०
अन्तरिक्ष (देव लिपि) — १३
अपभ्रंश भाषा — ८, २६, ७०
अपरगोडादि लिपि — १३
अपराजित टीका — ६३
अपराजितसूरि (टीकाकार) — ६४
अफगानिस्तान (देश) — ६५
अभयदेव सूरि (टीकाकार) — ६
अभिनवसार चतुष्टय — ३४
अभिमान चिन्ह — ७१
अभिमानमेरु — ७१
अमयाराहणा (गणि अंबसेनकृत) — ५६
अमरकीर्ति (कवि) — ६४
अमरावती — ७६
अमीता (प्राचीन कलिंग की राजकुमारी) — ३
अमृत (सेनापति) — ३३
अमेरिका — ६१, ७७
अमोघवर्ष (राष्ट्रकूट वंशी सम्राट) — ३६, ३७, ३८, ४०
अम्मइय (कर्नाटक का प्रतिष्ठित नागरिक) — ७२
अम्बेडकर (बाबासाहिब भीमराव डॉ.) — १६
अयोध्या (नगर) — ३०
अरबी (भाषा) — १२, ३७, ४८
अरेय मरेय नामक सेठ — ३३
अर्धमागधी — ११
अलबेरुनी (विदेशी पर्यटक) — ६६
अल्लालाहि (फारसी) — ५४
अवरिवाजे—अन्य दूसरे — ५५
अविनीत (गंग-नरेश) — ३२, ३७
अशोक (मौर्य सम्राट) — २, १०, ३५,

अष्टपाहुड – ६३
अष्टापद (कैलाश पर्वत) – ६८, ६६
असली हीरा – ४०
आसिक (महाराष्ट्र का एक प्राचीन देश) – २०, २७
असुर लिपि – १३
अस्तारां (फारसी) = नक्षत्र – ५७
अस्त्राखान (रूस का एक नगर) – ६२
अहंगयाल (प्राच्यकालीन विस्मृत एक नगर) – ६६
अहमदाबाद – ४६, ६०
आइने अकबरी (अबुल फजलकृत फारसी ग्रंथ) – ५०
आकित (फारसी) = कुशल – ५४
आगमवाणी – २६
आगरा – ४३
आचण्ण (कन्नड कवि) – २६
आचलदेवी (कन्नड महारानी) – ३४
आचारप्रदीप (लुप्तग्रंथ) – ६३
आदंसलिवि (लिपि) – १३
आदतनु (फारसी) = सहायता – ५६
आदित्य (वर्धमान पुराण (अनुपलब्ध) का प्रणेता) – ६३
आदित्यसहस्रनाम (स्तोत्र) – ५०
आदिनाथ (तीर्थंकर) – २२, ४४, ७३
आदिनाथ (मंदिर) – ४४, ७३
आदिपम्प (कन्नड कवि) – २६, ३०
आदिपुराण – ३०, ३८
आनिमानि (फारसी)=हमारी प्रार्थना– ५४
आन्ध्र (प्रदेश) – ६६
आमेरशास्त्र भंडार (जयपुर) – ६०
आयप्रश्नतिलक (ज्योतिष ग्रंथ) – ४५
आय-सदभाव (ज्योतिष का एक लुप्त ग्रन्थ) – ४५
आर्यावर्त – १६
आर्यमंखु –१५
आयात-निर्यात – ४०
आरमाइक-लिपि – १०
आरा – ६०, ६७, ७४, ७७
आराधना ग्रन्थ (आचार्य शिवकोटि कृत) – ६२
आलम शाह (कालपी का शासक) – ४६
आल्सडोर्फ (डॉ.) – ७६
आवश्यक निर्युक्ति भाष्य – ६
आहू (फारसी) = कृष्णसार – ५२, ५७
इंद्रनंदि (श्रुतावतार नामक ग्रंथ के लेखक) – २६
इक्ष्वाकुवंशी – ३१
इटली (देश) – ४७
इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी (लन्दन)– ६१
इन्द्र (प्रतिष्ठित कन्नड़ नागरिक) – ७२
इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) – ४७
इब्राहीम शाह (शासक) – ४६
इलाहाबाद – ६०
ईंट (लेखनोपकरण-सामग्री) – २
ईख – ५८
ईरान (देश) – ७७
ईब्राहिम (फारसी) = ब्रह्म – ५६
ईश्वर चमूपति (कर्नाटक का एक सेनापति) – ३१
ईहं (फारसी) = यह, मैं – ५६
उकेशवंशी – ७५
उग्रादित्य (कल्याणकारक नामक आयुर्वेद ग्रन्थ का लेखक)– २६, ३४, ३८, ६०
उच्चकप्प (उच्छ्कल्प वर्तमान ऊँचेहरा जहाँ परिव्राजकों का साम्राज्य था) – ६६
उच्चतरिआलिपि – १३
उज्जैन – ६०
उत्क्षेपावर्त लिपि – १२
उत्तरकुरुद्वीप लिपि – १२

उत्तरपुराण (गुणभद्रकृत) – ३८
उत्तर प्रदेश – ९६, ६६
उदयगिरि (कलिंग की ऐतिहासिक पहाड़ी) – १०, १७, ६८, ६६
उदयदेव पण्डित (अपरनाम निरुवद्य पण्डित) – ३५
उदयसमुद्रगणि (ग्रंथकार) – ५०
उदु (फारसी) = अगरु – ५८
उर्दू (भाषा) – ५८
उर्ध्वान्तरित (लिपि) – १०
उपासकाचार – ६२
उमास्वामी (आचार्य) – २६
उरगपुर (त्रिचरापल्ली) –२४, ३६
उग्र लिपि – १२
उग्रादित्य आचार्य – ६०
उलात (फारसी) = देश – ५८
उस्तुरू (फारसी) = ऊँट – ५७
ऊर्ध्वधनुलिपि – १२
ऊर्ध्वी (लिपि) – १२
ऊयाजकु (फारसी) = गृहगोधिका – ५३
ऋग्वेद – २२
ऋषभ (तीर्थंकर) – २१, २२, ५४
ऋषभस्तोत्र –४६, ५०, ५१,
ऋषितपस्तप्रलिपि – १३
ऋषिराम (साहू नेमिदास का पुत्र) – ७५
एक्कोटि जिनालय – ३३
एथेंस (यूनान की राजधानी) – ४
ए. एन. उपाध्ये (प्रो.डॉ.) – ७६, ८१
एस.एम.कात्रे – ६
ऐचिरल (कर्नाटक का सेनापति) – ३१
ऐहोले (सुप्रसिद्ध तीर्थ नगर) – ३५
कक्कुक (घट्याला, जोधपुर का शासक) – ३५, ३६
कगंडक दुर्ग – ६६
कछवाहा (राजवंश) – ४७
कच्छपी (ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि का एक प्रकार) – ६
कटवप्र-श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) – १४, १७
कतानु (फारसी) = मत्कुण – ५७
कदम्ब (वंश) – ३१, ३४
कनारिलिपि (कन्नड़ लिपि) – १२
कर्नाटक –२८, २६, ८०
कनिंघम (पुराविद्) – ३६
कन्ती (कन्नड़ कवियत्री) – २६
कन्नड़ लिपि –१५
कन्नड़ साहित्य – २७, २८
कपड़ा (प्राचीन लेखनोपकरण-सामग्री) – २
कबीर (सन्त कवि) – ६७, ७६
कमलकीर्ति (भट्टारक) – ४६
कमलनव (कन्नड़ कवि) – २६
कमलसिंह (संघपति एवं मंत्री) – ४४, ७१, ७२, ७४
कम्महलखिण-सम्राट खारवेल कालीन कार्यवाहक-पदाधिकारी – २७
कम्बिका (ताड़पत्रीय पोथी का एक प्रकार) – ७
करकंडु चरिउ – ५६
कर्गलीय (कागज पर लिखित) – ४५
कर्णपार्य (कन्नड़ कवि) – २६
कर्नाटक कवि चरिते – २, १६, २१, २२, २३, २६, ३०, ३१
कर्पूर – ५८
कलकत्ता – ६४, ७६
कलाप, कलापक (कातन्त्र-व्याकरण) – ६४, ६६
कलिंग-जिन – १७, १६, २०, २१, २४
कलिंग (लिपि) – ११
कल्कि (राजा) – ६८

कल्पद्रुम पूजा – २५
कल्पसूत्र – ८
कल्याणकारक (उग्रादित्यकृत आयुर्वेदिक ग्रंथ) – ६०
कविराजमार्ग (कन्नड़ का लक्षणग्रंथ) – ३८
कसायपाहुड – १५, ४५
कस्तूरचन्द्र कासलीवाल (डॉ.) – ८२
कस्तूरी – ५३, ५८
कांगडा – ६६
काँची – २४
काजू – ५
काणूर गण – ३१
कातन्त्र व्याकरण – ६४, ६५, ६६
कात्यायन – ६४
कादम्बरी – ५०
कान्तार-चर्या – ६८
कायस्थ (जाति) – ७४
कारंजा – ६६, ७६, ७६
कार्तवीर्य (राजा) – ३३
कार्तिकेय (स्वामी, आचार्य)–१५, २६, ३७
कालन (शिलाहार सेनापति) – ३३
कालपी – ४६
कालापक (व्याकरण) – ६४
कालिदास (नाग, डॉ.) – ४६
कालिदास (महाकवि) – ५, १६, ३७, ६८, ७५
कावरि (फारसी) = प्राणि विशेष – ५७
काव्य–पिशाच (महाकवि पुष्पदन्त की उपाधि) – ७१
काव्य सुधा-धारा – २६
काशगर (अफगानिस्तान का एक सांस्कृतिक नगर) – ६२
काशी – ४१
काश्मीर – ६५, ६८
काष्ठपत्र – २
काष्ठ पट्टिका (पाण्डुलिपि सम्बन्धी) – २
काष्ठासंघ (भट्टारकीय परम्परा) – १६, ४५
कॉस्य (प्राच्यकालीन-लेखनोपकरण-सामग्री) – २
कॉंची (राजधानी नगर) –२७
किन्नर-लिपि – १३
किरातार्जुनीयम–महाकवि भारवि कृत – ३२
कीरी (लिपि) – १२
कीर्तिदेव (कदम्ब-शासक) – ३४
कीर्तिरत्न (कवि) – ४५
कीर्तिवर्मा (कन्नड़ कवि) – २६
कीर्तिस्तम्भ (कवि) – ४२
कीर्तिसिंह (तोमरवंशी राजा)– ४२, ४३
कीर्तिस्तम्भ (राजा अनंगपाल तोमर द्वारा दिल्ली में निर्मापित)– ४२
कुतुबुद्दीन ऐबक – ४२, ७३
कुतुबमीनार – ४२, ७३
कुतुब्बुल-इस्लाम (मस्जिद का नाम)–७३
कुन्दकुन्द (आचार्य) – १२, १५, २६, ३७, ६८, ७१
कुन्कुन्दभारती (दिल्ली) – १७
कुन्दकुन्दान्वयी – ५८
कुन्थलगिरि – ६८
कुप्पटूर (नगर) – २८
कुमारपाल-प्रबंध (जिनमण्डल गणि)– ८
कुमारपाल चालुक्य नरेश – ८
कुमारवटुक (राज्याधिकारी) – २७
कुमारसम्भव (महाकवि कालिदासकृत) – ६८
कुमारीपर्वत (भुवनेश्वर) – २६
कुमुदेन्दु योगी – ३४
कुरलकाव्य – १६

कुरजांगल – ४६
कुलग (फारसी) = काक – ५७
कुवलाल (कर्नाटक की राजधानी) – ३२
कुशराज (राजा वीरमदेव तोमर का महामंत्री) – ७४
कुशलसिंह (राजा) – ४७
कूटलिपि – ११
कूटलेखन – ११
कृष्णराज (राजा) – ७२
कृष्णसार – ५३
के.पी.जायसवाल (डॉ.) – १६
के.पी.जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (पटना) – ६०
के.बी.पाठक (डॉ.) – ७५
केरल – ७६
केरलपुत्र – १४, १८
केलंगेरे (कर्नाटक के प्रसिद्ध जैन केन्द्र) – ३४
केशराज मुनि (रामयशोरसायनरास के लेखक (सचित्र ग्रन्थ) – ८
कैलाशचन्द्र (पं.) – ८१
कैलाशनाथ काटजू – १७
कैलाशपर्वत – ६६
कोंकणपट्टण – ७०
कोंगालव राजेन्द्र – ३६
कोंगुणि वर्मा – ३२
कोटिशिला – ६८
कोप्पण (कर्नाटक का प्रसिद्ध जैन केन्द्र) – २६, ३४
कोप्पण (कवि) – ३४
कोप्पल – २८
कोल्हापुर – ४५
कोहिनूर हीरा – ४३
कौमार – ६५
खउसार (फारसी)=चर्मकार–चमार – ५८
खंडगिरि (भुवनेश्वर) – १०, १७, ६६
खरताड (ताड़ का एक प्रकार) – ६
खरोष्ठी (लिपि) – ६, १०, ११, १२, १३
खापुरू (फारसी) = कर्पूर – ५८
खारवेल (कलिंग सम्राट) – २, ४, ५, १०, १६, १७, १८, २०, २३, २४, २७, २८, २६, ३५,
खारवेल-शिलालेख – २, १६, २१, २८
खास्य (लिपि) – ११, १२
खुशफहम (कादम्बरी टीकाकार भानुचन्द्र सिद्धिचन्द्रगणि के लिये सम्राट अकबर द्वारा प्रदत्त उपाधि) – ५०
खेड़ागढ़ (जोधपुर) – ७५
खेमसिंह (रइधू कवि का आश्रयदाता) – ७१
खोतन (नगर) – ६२
गंगराज अविनीत – ३२, ३७
गंग (राजवंश) – ३२
गंग (नरेश) – ३०
गंगवाडी (कर्नाटक का एक सांस्कृतिक नगर) – ३२
गंडी (ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि का एक भेद) – ६
गंधहस्तिभाष्य (एक लुप्त ग्रंथ) – ६३, ७७, ७६
गढ़ चम्पावती – ४७
गणावर्त्तलिपि – १२
गणियालिपि – ११, १२
गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान – ६७
गन्धर्व-लिपि – १३
गन्धर्व-विद्या – २४
गयासुद्दीन (बादशाह) – ४६
गरुड़ लिपि – १३
गवर्नमेंटस क्वीनस् कालेज, वाराणसी – ६०

गायकवाड़-सीरीज (ग्रंथमाला) – ६०
गिरनार (पर्वत) – ६८
गिलगित (काश्मीर) – ५
गुजरात – १३, १५, ३८, ४२, ६८, ७६
गुजराती – ४८
गुणकीर्त्ति (भट्टारक) – ७४
गुणधर (कसायपाहुड के लेखक आचार्य) – १२, १४, १५, ३७
गुणभद्र आचार्य – १३, २६, ३४, ३८
गुणवर्मा (द्वितीय) कन्नड़ कवि – २६
गुणाढ्य (कवि) – ३२, ६३
ग्रॉस (इतिहासकार) – ३६
गृद्धपिच्छ (आचार्य) – १५
गृहगोधिका (प्राणी विशेष) – ५८
गोपनन्दि पण्डितदेव – ३४
गोपाचल(ग्वालियर) –४३, ४८, ७३, ७४
गोपाचलदुर्ग (ग्वालियर का किला) – ४६, ४८, ७४, ७५, ७७
गोम्मटसार कर्मकाण्ड – ४६
गोम्मटेश्वर – ३०
गोविन्दा–कन्नड़ कवि – ४४
गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा पं. – ४, ५
ग्वालियर – ४३, ४४, ६०
घटियाली (जोधपुर) – ३५, ४७
चंद्रम (कन्नड़ कवि) – २६
चक्रलिपि (लिपि) – १३
चट्टलदेवी (उदार दानशीला कन्नड़ महिला) – ३४
चन्दवार (नगर) – ७४
चन्द्रगुप्त (मौर्य) प्रथम – ४, ५, १४, १८
चन्द्रदेवमुनि – २६
चन्दप्पह चरिउ–अपभ्रंश लुप्त ग्रन्थ – ५६, ७३
चन्द्रमौलि (राज्यमंत्री) – ३४
चन्द्रवाडपट्टन (चन्दुवार फिरोजाबाद यू.पी.) – ४३, ७४
चमड़ा (प्राच्यकालीन लेखनोपकरण सामग्री) – २
चमूपति (चामुण्डराय) – ३१
चम्पापुर (नगर) – ७०
चम्पावती (दुर्ग) – ४७, ४८, ५०
चर्मकार – ५८
चाँदी (प्राच्यकालीन लेखनोपकरण सामग्री) – २
चाणक्की लिपि – १२
चाणक्य (कौटिल्य) – ६६
चाणक्क चन्द्रगुप्त कथा ग्रन्थ – ६८
चामुण्डराय (सेनापति) – २६, ३०
चामुण्डराय–पुराण – ३१, ३२
चारित्रसार (चामुण्डराय कृत) – ३१
चारुदत्त (महासार्थवाह) – ६१
चारूकीर्ति मुनि – ३४
चालुक्य राजवंश दक्षिण – ३१, ३५, ३६
चीन देश – ४७, ६८, ७७
चीनी-क्षेत्र – ६८
चीनी–विश्वकोष – १०
चीनी लिपि – ११, १३
चित्रसेन पद्मावती चरित्र – ६२
चुरू (राजस्थान) – ४७
चेर (राज्य) – १४, १८
चैत्यवृक्ष – २३
चोयट्ठि–चउअट्ठि (द्वादशांग वाणी) – २१, २६
चोल (राज्य) – १४, १८
चौंसठ कलायें – १३, १४
चौहानवंश – ४३, ७४
जक्कणव्वे (कर्नाटक की आदर्श महिला) – ३४
जक्कियव्वे (महासति) – २६, ३२

जक्कियव्वे (कर्नाटक की प्रशासिका) – ३३, ३४
जगडूशाह (गुजरात का दानवीर सार्थवाह) – ४०, ४१
जगत्नाथ (जगन्नाथ) – २३
जगद्दलसामन्त (चिकित्सक) – २६
जगदीशचन्द्र वसु (वैज्ञानिक) – २३
जगन्नाथपुरी – २३
जजिया कर – ५०
जटासिंहनन्दि (वरांगचरितकार) – २६
जन्न (कन्नड कवि) – २६
जंबेश्वर-गुंफा – २७
जम्मू–काश्मीर – ६८
जयधवल – ८, ८२
जयमित्रहल्ल (अपभ्रंश वर्धमान चरितकार) – ५६
जयपुर – ६०
जयसोम उपाध्याय (मुगलसम्राट द्वारा उपाधि सम्मान प्राप्त) – ५०
जर्मनी – ४७, ४८, ६१, ७७
जल्पनिर्णय (अनुपलब्ध ग्रंथ) – ६३
जवणी (लिपि) – १२
जवाहरलाल नेहरु (पं.)– १६, १७, १८, ६८
जसहरचरिउ (अपभ्रंश ग्रंथ) – ६, ७१
जहाँगीर (सम्राट)– ४०, ४२, ४४, ४६, ४६, ५०
जहाँगीरनामा (फारसी ग्रंथ) – ५०
जहाँगीरपसंद – ५०
जानकी प्रसाद द्विवेदी (डॉ.पं.) – ६४
जानकीवल्लभ पटनायक (उड़ीसा के मुख्य मंत्री) – १७
जॉन मरे (अंग्रेज इतिहासकार) – ६६
जान हर्टेल (प्रो.) जर्मन समीक्षाकार – ४८
जापान – ७७
जिणरत्तिकहा (अप्रकाशित अपभ्रंश ग्रंथ) – ४६
जिनप्रभसूरि (फारसी ऋषभ स्तोत्र के संस्कृत टीकाकार) – ५०, ५१, ५४
जिनभद्रसूरि – ७५
जिनमण्डन गणि – ८
जिनवर-विहार – ५८
जिनसेन (आचार्य) – ६, २६, २६, ३६
जिनेन्द्रदत्त–सार्थवाह – ६१
जीमूतवाहन (राजा) – ४२
जीवकचिन्तामणि (तमिल ग्रंथ) – २४
जीवदेव (विस्मृत ग्रंथकार) – ४३
जुगलकिशोर मुख्तार (पं.) – ८१
जैन अग्रवाल – ५१
जैन ग्रन्थ रत्नाकर – ६०
जैनबालाश्रम (दिल्ली) – ७६
जैनमूर्ति कला – २१
जैनमूर्ति पूजा – ७, २१
जैन विद्यापीठ – ३७, ३६
जैनशास्त्र भण्डार (नागौर) – ६०
जैन सिद्धांत भास्कर (शोध पत्रिका) – ६०
जैन सिद्धांत भवन (आरा) – ६०
जैसलमेर – ६०
जोधपुर – ६०, ७५
ज्योतिषी–सुग्रीव (लेखक) – ४५
झाणपईव (अपभ्रंश ग्रंथ) – ५६
झिलाय नगर – ४७
टोंक – ४७
डूँगरसिंह (गोपाचल का तोमर राजा) – ४३, ४४, ७२
डेकिन कालेज, पूना – ६०
ढाका, (वर्तमान बंगला देश की राजधानी) – ४७

ढिल्ली (दिल्ली) — ४२
णमोकार मन्त्र — २१, २३
णवयार मंत्र — ५६
णाड (अज्ञात नगर) — ६६
णायकुमारचरिउ (पुष्पदन्त) — ७१
णेमदास (सेठ) — ७५
तक्षकगढ़ दुर्ग — ४७
तक्षकोको (मैक्सिको) — ६२
तक्षशिला — १०
तनुहांग (मध्य एशिया) — ६२
तमिरदेहसंघात–खारवेल कालीन तमिल संघ — २०
तमिल — ११, २०, २४
तमिल जनपद — १८
तमिलनाडु — ७६
तमिल महासंघ — २०
तमिल लिपि — ११
तमिल संघात — २०, २८
तलकाड–कर्नाटक का प्राचीन जैन विद्यापीठ — २८, ३७
ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि — ७, ४५
ताम्रपट्ट — ४१
ताम्रपर्णी — १८, २०
तारूसंग (फारसी) = मोरपक्षी — ५७
तिब्बत देश — ३६, ६२
तिब्बती अनुवाद — ३६, ७७
तिब्बती लिपि — ३६
तिरुवल्लुवर — २४
तिलकचन्द्र — ७५
तिसट्ठिपुरिसगुणालंकारु — ७२
तुर्किस्तान — ५, १०
तुरुक्की-लिपि — १२
तुलादान — २५
तोमरवंशी राजा — ४२
तोलकप्पियम (तमिल जैन व्याकरण ग्रंथ) — १६, ७१
त्रिगर्त — ६६
त्रिकालमुनिभट्टारक — ३५
त्रिचिरापल्ली — २४
त्रिपिटक — ६६
त्रिषष्ठिशलाकामहापुराणपुरुषचरित — ४०
त्रैविद्य-देव — ३४
त्रैविद्य गोष्ठी ग्रन्थ — ६२
थलु कायस्थ — ७४
थिरुक्कुरल — २४
दडिग, इक्ष्वाकुवंशी — ३१
दक्षिण लिपि — १३
दण्डक — २०, २८
दन्तिदुर्ग — ३२
दयाकुसल — ५०
दयापाल (विद्वान) — ३५
दयासुन्दर काव्य — ७४
दरद (लिपि) — ११, १३
दरबारीलाल कोठिया पं. — ८२
दरभंगा (नगर) — ६०
दलसुख मालवणिया (पं.) — ८२
दशभक्ति — ६३
दशवैकालिक (हारिभद्रीय टीका) — ७
दशोत्तरपदसन्धि लिखित लिपि — ११
दशोत्तर लिपि — ११
दानशाला — ४२
द्राविडी (लिपि) — ११, १२, १३
द्वादशांगवाणी — १३, २१, २५
द्वादशानुप्रेक्षा (कुन्दकुन्दकृत) — ६३
दिरम =चार आना के बराबर एक सिक्का — ४१
दिलावरखाँ गौरी — ४३
दिल्ली — ३६, ४२, ४७, ६०, ६५, ७३, ७६

दिवाकरनन्दि (कवि) – २६
दिवाकरसेट्टि – ३३
द्विरुत्तरपद सन्धि लिखित लिपि – ११, १३
दुर्गसिंह (कातंत्र व्याकरण का टीकाकार) – ६५
दुर्लभ–काक – ५७
दुर्विनीत (गंगराज) – १५, ३२
देवगण (मूलसंघ) – ३७
देवगुप्त (ग्रंथकार) – ६३
देवनन्दि पूज्यपाद (आचार्य) – २६, ३२,३३, ३५, ३७, ४४, ६०
देवनागरी लिपि – १२
देवराज (सेनापति) – ३१
देवलिपि – १३
देवसेन गणि – ५६
देवीदास (बुन्देली कवि) – ६७, ६८
देवीदासविलास – ६७, ६८
देवेन्द्र कुमार जैन डॉ. – ८२
देवेन्द्र सिद्धांतदेव – ३४
दोड्डय्य (कन्नड पुराणेतिहासकार) – २६
दोहडोट्ट (नगर) – ६६
द्रमिल्ल (द्रविड) – २३
द्रविड – २३
द्रव्यप्रमाण – १५
धणयत्त चरिउ – ५६
धनपाल कवि – ५६
धम्मपद – ५, १०
धरणीप्रेक्षणालिपि – १३
धरसेन (आचार्य) – १५
धराधर पण्डित (मुहम्मद बिन तुगलक का जैन ज्योतिषी विद्वान) – ५०
धर्मचरितटिप्पण (अप्राप्त ग्रंथ) – ६४
धर्मशर्माभ्युदय (महाकाव्य) – ७५
धर्मसेन (एक विस्मृतग्रंथकार) – ४५
धर्मोपदेश चूडामणि (लुप्त ग्रंथ) – ५६
धवल (अपभ्रंश कवि) – ८, २६, ५८
धवला टीका – ६०, ७६, ७८, ८२
नगरकोट (विस्मृत नगर) – ६६
नटी–लिपि – १२
नट्टलसाहु (महाकवि बिबुध श्रीधर का आश्रयदाता) – ४२, ४४, ६१, ७१, ७३, ७६
नन्दमौर्ययुग – १०
नन्दराज – १६, २१
नन्दिगिरि – ३२
नन्दिपद (खारवेल शिलालेख में उत्कीर्णित चिन्ह) – २३
नन्दिवर्धन – १६
नन्न (मंत्री) – २६, ४०, ४१, ७१
नयनन्दि (अपभ्रंश कवि) – ५८
नयविजय (ग्रंथकार) – ६२
नरसिंहदेव – ३०
नयसेन (कन्नड़ लेखक) – २६
नरसिंहाचार्य (कन्नड इतिहासकार) – ३०
नवस्तोत्र (लुप्तग्रंथ) – ६२, ६३
नवातु (फारसी) = शर्करा – ५८
नागचन्द्र (कन्नड कवि) – २६
नागदेव (कन्नड सेनापति) – ३३
नागपुर – ६०
नागरखण्ड (जनपद) – ३३
नागरी (लिपि) – १२
नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वाराणसी) – ६०
नागलिपि – १३
नागवर्मा (कन्नड कवि) – २६
नागहस्ति (गुणधराचार्य–शिष्य) – १५
नागौर – ६०

नाथूराम प्रेमी (पं.) – ८२
नादिरज्जमा (सिद्धिचन्द्र के लिये मुगलसम्राट अकबर द्वारा प्रदत्त उपाधि) – ५०
नादिरशाह – ४७
नान्दिपद – २२
नालडियार (तमिल जैन ग्रंथ) – १६, २४
निआर्कस (सिकन्दर का सेनापति) – ४
निगट्ठ भवन (निर्ग्रंथ भवन) – १८
निर्ग्रन्थ धर्म –१८
निक्षेपलिपि – १३
नियमसार – ६३
निरवद्य पण्डित – ३५
निर्मलदास (श्रावक कवि) – ४८, ४६
निर्वाण काण्ड – ६८
नेपाल – ६२, ६५, ७७
नेमिचन्द्र (सिद्धांत चक्रवर्ती) – ३०
नेमिचन्द्र शास्त्री (डॉ.) – ८२
नोक्करय्य सेट्टि (कर्नाटक का एक महासेठ) – ३३
पउमचरिउ – ४६, ५६, ६१
पंचतंत्र – ४८
पंचमीकहा (लुप्त अपभ्रंश ग्रन्थ) – ५६
पंचरंगी–झंडा – ७३
पंचाख्यान भाषा – ४८
पंचास्तिकाय – ४७, ४६, ६३
पंजिकावृत्ति (कातंत्र-व्याकरण की) – ६५
पज्जुण्णचरिउ (अपभ्रंश-महाकाव्य) – ५६
पटना – २३
पट्टणस्वामी – ३३
पतंजलि – ६५
पद्म कवि (राजस्थानी) – २६
पद्म (राम) – ३४
पद्मनाभ (कन्नड कवि) – २६
पदमनाभ कायस्थ (कवि) – ७४
पद्मावती देवी – ३१
पनियार मठ – ४५
पन्नग (सर्प) – ५७
पन्नालाल (साहित्याचार्य पं.) – ८२
पम्प (कन्नड़ कवि) – २६, ३७
पम्पादेवी (कन्नड़ महारानी) – ३०, ३४
परमानन्द (पं.) – ८२
पल्लवभार – २५
पल्लव (राजवंश) – २७
पल्लवकीर्ति (विस्मृत कवि) – ४५
पाकिस्तान – १०
पाटन (गुजरात) – ७, ६०
पाटलिपुत्र – १४, १६
पाणिनि (वैयाकरण) – ४२, ६४
पाणिनीय व्याकरण न्यास (लुप्त ग्रंथ) – ६३
पाण्ड्य (राजवंश) – १४, १८, १६
पाण्डव नरेश – १६
पाण्ड्व-पुराण (अपभ्रंश, अप्रकाशित ग्रंथ) – ४६
पाण्डुकाभय (सिंघल नरेश) – १८
पाण्डुरवर्ण – २, ४
पाण्डुलिपि – ३, ४५
पातसाहि अनंगशाह (ढाका नरेश) – ४७
पात्रकेशरी (जैनाचार्य) – ६३
पादलिखित लिपि – १३
पामब्बे (कन्नड की आदर्श महिला) – ३०, ३४
पारसकुल – १०
पारसी (लिपि) – १२, ५४
पारिसेट्ठि (कर्नाटक का सेठ) – ३३
पार्वती – ४४
पालि (भाषा) – ६
पाल्यकीर्ति (शाकटायन, वैयाकरण) – ३८

पार्श्व (तीर्थंकर) – २१
पार्श्व पण्डित (कन्नड कवि) – २६
पासणाहचरिउ (बुध श्रीधर)
कृत (अपभ्रंश महाकाव्य) – ४२, ६५, ७३
पाहुड दोहा – ७६
पिथुंड – २२
पीतल (धातु प्राच्यकालीन
लेखनोपकरण सामग्री) –. २
पुंडरीकणी (नगरी) – २, ६६
पुक्खलावइ (पुष्कलावती नगरी) – ६६
पुण्यविजयजी (प्राच्यविद्याविद् मुनि) – ५
पुण्यविजय जी (मुनि) – ८१
पुण्णासक्कहा (रइधू कृत) – ७४
पुण्णित (सेनापति) – ३१
पुण्णितमय्य (कन्नड सेनापति) – ३४
पुन्नाड (जैनविद्या केन्द्र) – २८
पुष्करगण (भट्टारकों का एक
सम्प्रदाय) – ४५
पुष्करसारी (लिपि) – १३
पुष्पदन्त (आचार्य) – १२, १५, १७, ३७
पुष्पदन्त (महाकवि) – ६, २६, ४०, ७१,
७२, ७५, ७८ ८६, ८७, ६२
पुष्पषेण सिद्धांतदेव – ३५
पुष्पलिपि – १३
पुष्पायुर्वेद – ६०
पूज्यपाद (आचार्य) – ६२
पूना – ५, ६०
पूर्वविदेह–लिपि – १३
पेकिंग (चीन) – ६२
पेरिस – ५८, ६१, ७७
पेरूर (ग्राम) – ३१
पोचव्वरसी (कर्नाटक की
आदर्श महिला) – ३४
पोत्थवं (पोथी–धर्मपुस्तक) – ७
पोदनपुर – २६, ३५
पोन्न (कन्नड. कवि) – २६, ३५
पोयसल वंश (होयसल वंश) – ३४
प्रतापसिंह (नरेश) – ४१
प्रतापरुद्र चौहान (चन्द्रवाडपट्टन
नरेश) – ७४
प्रतिहार वंश – ३५
प्रभंजन राजर्षि (विस्मृत ग्रंथकार) – ६३
प्रभाचन्द्राचार्य – ७, २६, ६८
प्रभुदयाल अग्निहोत्री (प्रो.डॉ.) – ६४
प्रमेयकमलमार्तण्ड – ७
प्रयाग – ६०
प्रवचनसार – ६३, ६५, ६८
प्रश्नरत्न (विस्मृत ज्योतिष ग्रंथ) – ४५
प्रश्नोत्तरमाला (देवेन्द्र टीका) – ६२
प्रश्नोत्तररत्नमालिका – ३८, ३६, ४६
प्रहलादनपुर (विस्मृत नगर) – ६६
प्राकृत – ८, ३३, ६६
प्राकृत शिलालेख – १८
प्राची नदी – २६
फादर माण्टेसर्राट
(विदेशी पर्यटक) – ६६
फार्वीस (इतिहासकार) – ३६
फारसी लिपि – १२, ५४, ५५
फारसी भाषा – ५०, ५२, ५३
फाहियान (चीनी पर्यटक) – ६६
फिरोजखान – ४०
फिरोजाबाद – ४३, ४६
फूलचन्द्र जी (सिद्धांतशास्त्री,
पं.) – ६७, ८१, ८२
फ्रांस – ४७, ६१, ७७
फ्रेंचभाषा – ४८
बंकापुर (कर्नाटक) – ३४
बंगलिपि – ११
बंगाल – ४७
बट्टकेर (आचार्य) – १५, ७६

बड़पुर (विस्मृत नगर) – ६६
बड़ली (ग्राम) –११, ३८
बड़ौदा – ६१
बनारसी दास (महाकवि) – ५१
बन्धुवर्मा (कन्नड़ कवि) – ३१
बर्मा (देश) – ६२, ६५
बम्बई – ६०
बलदेव (उपाध्याय पं.) – ३१, ८२
बलदेव (सेनापति) –३१
बलभी (गुजरात का एक नगर) – १४
बलवीर, नलिनी, प्रो. (पेरिस) – ७७
बलि राजा – ४२
बर्लिन – ६, ४८, ७६
बल्लभभाई (पटेल, सरदार) – १७
बल्लाल (राजा) – ३४
बहलोक लोदी (सम्राट) – ४६
बाबर (सम्राट) – ४६
बाबरनामा (फारसी ग्रंथ) – ५०
बालचन्द्र कवि – २६
बालचन्द्र मुनि (मूलसंघ देशीगण) – ३४
बालचन्द्र (कन्नड कवि) – ३४
बाहुबलि पण्डित (कन्नड कवि) – २६
बाहुबलि सेट्टि (कन्नड श्रेष्ठि) – ३३
बिहार (प्रान्त) – ६७
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) – ६०
बीजवाड़ा – ४५
बी.आर.अम्बेडकर (डॉ.) – १६, ६७
बीसलदेव (राजा) – ४८
बुद्ध (गौतम) – ५
बुन्देलखण्ड – ७१, ७६
बुन्देली भाषा – ६७
बृहत्कथा – ६३
बेतुला अतिलिस डी.डोन (भोजवृक्ष का इटालियन नाम) – ५
बेबर, प्रो. डॉ. – ६६
बोच्च (कन्नड़ सेनापति) – ३०
बोपदेव (वैयाकरण) – ४४
बोप्प सेनापति – ३४
बोप्पण (कन्नड कवि) – २६, ३१
बोस्टन (अमेरीका) – ६१
ब्रह्मबल्ली–लिपि – १३
ब्रह्मशिव (कन्नड कवि) – २६
ब्राह्मण धर्म – १६
ब्राह्मी (तीर्थंकर ऋषभदेव की पुत्री) – ६
ब्राह्मी लिपि – १३, १७, १६
ब्राह्मी लेख – १७, १६
ब्रिटेन – ४७, ७७
ब्रेजा (भोजपत्र) – ५
भक्तामर स्तोत्र वृत्ति – ५०
भगवतीदास (पं.) – ५६
भगवान दास राव (शासक) – ४७
भगवान लाल इन्द्रजी (पं.) – २१
भट्टअकलंक – २६
भद्रबाहु (आचार्य श्रुतकेवली) – १४, १७, १६, ६८
भद्रेश्वर (गुजरात का एक नगर) – ४०, ४१
भरत चक्रवर्ती (ऋषभ पुत्र) – ३०, ३८
भरत (कन्नड सेनापति) – ३१
भरत (महामात्य) – २६, ४०, ७१, ७२, ७६
भरतपाल (चन्द्रबाडपट्टन का प्रथम चौहान नरेश) – ४३
भरधवस (भारतवर्ष) – १६, १७, १८
भविष्यदत्त–काव्य (विबुध श्रीधरकृत) – ४६
भविष्यदत्त (सार्थवाह) – ६१
भाण्डारकर रा.गो.(डॉ.) – ३५, ४०
भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना – ६०

भानुचन्द्र-सिद्धिचन्द्र गणि (कादम्बरी के टीकाकाकर)– ५०, ५१
भारत – ७, १६, १७, ३०, ४३, ६२, ६४, ७०, ७६
भारमल्ल कछवाहा (शासक) – ४७
भारवि (संस्कृत महाकवि) – ३५
भावसेन-त्रैविद्य – ६५, ६६
भावी-जिन – ७२
भास कवि – ३७
भुवनेश्वर (उड़ीसा) – २, १६
भूटान (देश) – ६२, ६५, ६७
भूर्ज (भोज वृक्ष या पत्ता) – ४, ५
भूतबलि (आचार्य) – १०, १२, १४, १५, १६, ३६
भूतलिपि – ११, १२
भोज (राजा) – ४२, ५८
भोज-पत्र (प्राच्यकालीन लेखनोपकरण सामग्री) – ५
भोजक (प्राचीन महाराष्ट्र का एक देश) – २७
भोट (भूटान देश) – ६६
भोमदेव लिपि – १३
मंगरस (सूपशास्त्र के कन्नड़ लेखक) – २६
मंगोलिया (देश) – ४७, ६२, ६५, ७७
मगध – १३, १७, २०, २३
मगध नरेश – १६
मगध–लिपि – ११
मगध सम्राट – १४
मगस (फारसी) = मक्खी – ५७
मणिमेखलै (तमिल का प्राचीन महाकाव्य) – २४
मथुरा – १४
मदुरई (तमिलनाडु) – १८
मध्यप्रदेश – १२, ६०, ६६, ६६
मध्याक्षर–लिपि – १३
मनुष्यलिपि – १३
मम्मणवाहण (विस्मृत नगर) – ६६
मम्माणिक-पाषाण – ४१
मयूरपिच्छी – ६४
मरेय (कर्नाटक का सेठ) – ३३
मद्रास – ६०
मलिकवाहण (विस्मृत नगर) – ६६
मल्लिषेणसूरि – २६
महमद (फारसी शब्द) = ईश्वर – ५६
महमूदशाह (सुल्तान) – ४६
महाचंद (अथवा महिंदु अपभ्रंश कवि) – ५६
महाधवल – ७, ८२
महापुराण (जिनसेन) – ८, ६३, ७५
महापुराण (कूची भट्टारककृत) शौरसेनी प्राकृत ग्रंथ, वर्तमान में अनुपलब्ध – ६३
महापुराण-अपभ्रंश (पुष्पदन्त) – ६४, ७५
महाबल (कन्नड कवि) – २६
महाभारत – ४४, ५८
महाभाष्य व्याकरण (पतंजलि कृत) – ६६
महामद (महामात्य) – २७
महाराष्ट्र – २०, २१, २६, ७०
महावंश – १८, २८
महावार्तिक – ६३
महाविजय प्रासाद – २६
महावीर (तीर्थकर) – ८, १६
महावीरचरिउ (जयमित्र हल्ल कृत त्रुटित, अप्रकाशित) – ५६
महावीरचरित (अमरकीर्तिकृत) अपभ्रंश लुप्त ग्रंथ – ५६
महावीराचार्य (गणितज्ञ) – २६, ३८
महेन्द्र कुमार (न्यायाचार्य, पं.) – ८२
महोरग लिपि – १३

महोपाध्याय (सिद्धिचन्द्रगणि की उपाधि) – ५०
माउण्टवैटन (भारत के पूर्व गवर्नर जनरल) – १७
मांडो – ४३
मागध लिपि – १२
मागुडी – ३३
माघनन्दि (सिद्धांत देव) – ३४
माथुरगच्छ (भट्टारक परम्परा की एक शाखा) – ४५
माधव (राजपुत्र) – ३१, ३३
मानसिंह (अकबर नगर राजमहल, बंगाल का शासक) – ४७
मानस्तम्भ – ४२
मारसिंह (नरेश) – ३०
मार्कण्डेय पुराण – १६
माललदेवी (कर्नाटक की महारानी) – ३४
मालवा – २
मालवी लिपि – १२
मास्को (रूस) – ६२, ६६
माहिंदु माही (फ़ारसी) = मछली – ५६
मिश्र (देश) – ७७
मिसिक (कस्तूरी) फारसी शब्द – ५८
मुइजुदीन (शासक) – ४१
मुंशी दिलाराम – ४६
मुग्धबोध (संस्कृत व्याकरण) – ४५
मुजफ्फरपुर (बिहार) – ६७
मुनि चन्द्र – २६
मुनिजिन विजय – ८१
मुनिसुन्दर (मुनि–लेखक) – ६५
मुबारिकशाह (शासक) – ४६
मुम्मुरिदण्ड (कर्नाटक का सेठ) – ३३
मुरुग (फारसी) = मुर्गा – ५७
मुलकगीर (दिल्ली का शासक) – ४७
मुष्टिव्याकरण – ६५
मुसिक – २७
मुहम्मद बिन तुगलक (दिल्ली का सुल्तान) – ४६, ५१
मुहम्मदशाह (शासक) – ४६
मूडबद्री या मूलबिद्री (जैन काशी) – ७, ६०
मूलदेवी लिपि – १२
मूलसंघी – ३४
मूलाचार (आचार्य बट्टकेरकृत) – ७७
मृगचक्रलिपि – १३
मृगपक्षि शास्त्र (जैनाचार्य हंसदेव कृत) – ५६
मेगास्थनीज (विदेशी पर्यटक) – ४, ६६
मेघकूटपुर (विस्मृत नगर) – ६६
मेघदूत (कालिदास द्वारा रचित) – ६८
मेहेसरचरिउ अपभ्रंश (रइधू कृत अप्रकाशित) – ७५
मैक्सिको – ६२
मैरियन (कन्नड सेनापति) – ३१
मोरिस विंटरनीज (इतिहासकार) – ४६
मोहनजोदारो – ६
मौलाना अबुलकलाम अजाद – १६
म्यांमार (बर्मा देश) – ६
यक्ष – ६८
यक्षिणी – १६
यक्षी–लिपि – १२
यतिवृषभ (मुनि, आचार्य) – ६३
यशोधरचरित – (अमरकीर्तिकृत लुप्त ग्रंथ) – ६४
यशोराशि – ७०
यशःकीर्ति (भट्टारक) – ४५, ७४
यापनीयसंघ – ६८
युकातान (प्राचीन मैक्सिको) – ६२

युधिष्ठिर (व्याकरणशास्त्र के इतिहासकार पं.) – ४४, ६५
यू.जी.सी. – ८१
युटिलिस–विटुला – ५
योगिनीपुर – ४६
रइधू (कवि)– ६, ४३, ४५, ५६, ७२, ७३, ७५, ७७
रइधू (साहित्य) – ४३, ४५
रट्ट नरेश (कार्तवीर्य) – ३३
रठिक – २०, २८
रत्नाकरवर्णी – २६
रन्न (कन्नड़ कवि) – २६, ३५
रयणसार – ६३
रविकीर्ति (ऐहोले शिलालेख का लेखक) – ३५
रविवयकहा (अप्रकाशित अपभ्रंश ग्रंथ) – ४६
रविषेण (पद्मपुराणकार) – २६
रहस्यलिपि – ११
रा. गो. भण्डारकर – ४०
राजगोपालाचार्य (चक्रवर्ती) – १७
राजप्रश्नीय सूत्र – ७
राजबलि पाण्डेय (डॉ.) – ३
राजमुकुट (सम्राट अमोघवर्ष का) – ३८
राजस्थान पुरातत्व विद्या मन्दिर – ६६
राजस्थानी – ३, ६, ४६, ७६
राजादित्य – २६
राजाराम जैन (डॉ) – ६८, ८२
राजेन्द्र कौगालव – ३४
राजेन्द्र प्रसाद (राष्ट्रपति) डॉ. – १६
राजेन्द्रलाल पुराविद् (डॉ.) – ४४
राक्षसी (लिपि) – १२
रामचन्द्र (चौहान नरेश) – ४३, ४७
रामचन्द्र (राव) घट्याली नगर का शासक – ४८
रामनाड् (दक्षिण का एक शहर) – १८
रामयशोरसायनरास (अपनरनाम सचित्ररामायण) – ६
रामसिंह (मुनि, पाहुडदोहा के लेखक) – ७६
रॉयल एशियाटिक सोसाईटी – ६६
राष्ट्रकूट (राष्ट्रकूट वंशी) – २७, ३२, ३७
रिट्ठणेमिचरिउ (स्वयम्भूकृत) – ४६, ५८, ५६
रिष्ट–पाण्डुलिपि – ७
रिष्टरत्न – ७
रिसह–ऋषभ – ५८
रूखचेतिय (खारवेल शिलालेख में अंकित एक चित्र) – २३
रुद्रप्रताप सिंह (चौहान नरेश) – ४३
रूस – ६१, ७७
रेचिमय्य (कन्नड सेनापति) – ३१
रेशन्दीगिरि – ६६
रोजी (फारसी) = विभूति – ५८
रोहिंसकूप (जोधपुर का एक नगर) – ३६
लज्जपिण्ड =लज्जा + पिण्ड (जगडू शाह द्वारा निर्मित) – ४२
लक्ष्मीयाम्बि (कर्नाटक की एक आदर्श महिला) –३४
ललित-विस्तरा – ११
लवणसागर – ३०
लाड लिपि – १२
लाडनूँ (नगर) – ४६
लालबहादुर शास्त्री पं. – ८२
लाल भाई दलपतभाई प्राच्यविद्या मन्दिर अहमदाबाद – ६०
लाहौर – ५
लिप्यासन (दवात) – ७

लुइस राइस (इतिहासकार) – ३२
लेख–प्रतिलेख–लिपि – १३
लेख्यवृक्ष – ५
लोक विभाग (सर्वनन्दि कृत), अनुपलब्ध ग्रंथ – ३
लोपांग (चीन) – ६२
लोहा (एक धातु, प्राचीन लेखनोपकरण सामग्री) – २
वज्रलिपि – १३
वडली (नगर, अजमेर) – २, ३, १०, ३४
बड्डकहा (गुणाढ्यकृत, लुप्तग्रंथ) – ६२
वरंगचरिउ – ५६
वर्णी जैन संस्थान, नरिया वाराणसी – ६७
वर्धमंगल (खारवेल शिलालेख में उत्कीर्णित चिन्ह) – २२
वर्धमान–सुदत्त (आचार्य) – ३३
वर्धमानपुर (वाढवाण, गुजरात) – ४१
वनवासी – २८
वल्लिगामें (कर्नाटक का एक जैन केन्द्र) – २८
वसुनन्दि (श्रावकाचार के लेखक) – २६
वहसतिमित्त–वृहस्पतिमित्र (मगध–सम्राट) – २१
वाटनगर (कर्नाटक की *प्राचीन जैन विद्यापीठ)* – ३८
वादामी (गुफाएँ कर्नाटक) – ३४
वादिराजसूरि – २६, ३६
वादीभसिंह – ३५
वायुमह लिपि – १३
वाराणसी – ६०, ६१
वाशिंगटन (अमेरीका) – ६१
वासुदेवशरण अग्रवाल डॉ – ६, ३६, ८२
वास्तु निर्माण – २६
विक्टोरिया (ब्रिटेन की महारानी) – ४३
विक्रम राजा – ४२
विक्रमादित्य राजा – ३७
विक्षेपावर्त्त-लिपि – १३
विजयण्ण (कन्नड कवि) – २६
विजयदेव पण्डित (कन्नड कवि) – ३५
विजयसेन सूरि – ५०
विट्टुला – ५
विदर्भ – ६६
विद्यानन्द (राष्ट्रसंत, आचार्य) – १७, ३१, ३६, ७६
विद्यानन्द महोदय (लुप्त ग्रंथ) – ६३
विद्यानन्दि (आचार्य) – ६४
विद्यानुलोम–लिपि – १३
विद्यावती जैन (डॉ.) – ६७, ८०
विबुध श्रीधर (अपभ्रंश कवि) – ४२, ४८, ५६, ६५, ७३
विमलचन्द्र पण्डित देव – ३५
विमलसूरि आचार्य (हरिवंशचरियं लुप्त के लेखक) – ३५
विमिश्रिता लिपि – १३
वियेना (ऑस्ट्रिया) – ६
विलियम जोन्स (सर डॉ.) – ६६
विवलियोथिक ग्रंथागार (पेरिस) – ६१
विष्णु (कन्नड सेनापति) – ३१
विष्णुपुराण – ६४
विष्णुवर्धन (होयसल नरेश) – ३१, ३३, ३४
विष्णु शर्मा (पं.) पंचतंत्रकार – ४८
विशाख आचार्य – १३, १८
विश्वनाथ दास (उड़ीसा के पूर्व मुख्यमंत्री) – १६
विंसेटस्मिथ (इतिहासकार) – ३२
वीरकवि (अपभ्रंश जंबूस्वामी चरिउकार) – ५६

वीरदास (आश्रयदाता–पुत्र) – ७४
वीर निर्वाण भारती – ७६
वीरवन्दक (विस्मृत कवि) – ४५
वीरम तोमर (गोपाचल का तोमर राजा) – ४७, ७४
वीरम राठौड़ राय – ४७
वीरसेन स्वामी (धवला टीकाकार) – २६, ३७
वी.राघवन (डॉ.) – ४८, ६१, ७६
वीसलदेव (राजा) – ४१
वृत्तविलास (कन्नड कवि सोमनाथ कृत) – २६
वृषभ पुत्र (भरत) – ३०
वेनेय–वीर सेनापति – २६
वेवर (प्रो. डॉ.) – ६६
वैदिक धर्म – १८
वैदिकागम – १४
वैद्यशास्त्र – ६३
वैशाली – ५
शंकर (भगवान) – ४४
शंकर सामन्त – ३३
शकारि–लिपि – १३
शर्की (मुस्लिम शासक) – ४३
शब्दावतार न्यास – ४४
शल्यतंत्र (लुप्त ग्रंथ) – ६३
शर्ववर्म – ६४, ६५, ६६
शहर (फारसी) = शहर, नगर – ५८
शाकटायन (वैयाकरण) – ३८
शान्तर (कर्नाटक का एक राजवंश) – ३४
शान्तलादेवी (महारानी) – ३४
शान्तिनाथ (कन्नड कवि) – २६
शान्तिनाथ पुराण (कन्नड कवि पोन्नकृत) – ३३
शान्तिनाथ पुराण (अपभ्रंश, अप्रकाशित महाकवि रइधू कृत) – ८
शान्तियण्ण (कर्नाटक का सेनापति) – ३१
शान्तियव्वे (कर्नाटक की आदर्श महिला विदुषी रत्न) – ३५
शान्तिषेण या शान्त (विस्मृत ग्रंथकार) – ६३
शास्त्रावर्त–लिपि – १३
शाहजहाँ (बादशाह)– ४७, ४८, ४६, ५०
शिलप्पदिकारं (तमिल का आद्य जैन महाकाव्य) – २४
शिलाहार – ३३
शिवकोटि (आचार्य) – ६२
शिवमार राजा (द्वितीय) – ३२
शिवार्य (आचार्य) – १५, ४०, ६३
शिवि (राजा) – ४२
शिशुनागवंशी (राजा) – १६
शुभचन्द्र (भट्टारक) – ४६
शूद्रक (महाकवि) – ३७
शौरसेनी (भाषा) – २८, ५१
श्रवणबेलगोला – ७, २८, २६, ३२, ३४, ६६
श्रीचन्द्र (अपभ्रंश कवि) – ५६
श्रीताड (ताडपत्र का भेद) – ६
श्रीदत्त (ग्रंथकार) – ६३
श्रीधर-विबुध (अपभ्रंश का महाकवि) – ४२, ६५
श्रीधराचार्य – २६
श्रीनन्दि (भट्टारक) – ६३
श्रीपाल–महासार्थवाह– ६१, ७०, ७१, ७७
श्रीपालचरित (रइधू कृत) – ७७
श्रीपाल त्रैविद्यदेव – ३४
श्रीलंका – ६२
श्रीविजय (अपरनाम अपराजित) – ६३

श्रुत जैनागम – १४
श्रुतकीर्ति भट्टारक – ५६
श्रुतकीर्तिदेव (कन्नड कवि) – ३४
श्रुतकेवली (आचार्य) – ६८
श्रुति–वैदिकागम – १४
षट्कर्मोपदेश (अमरकीर्ति कृत) अपभ्रंश – ५३
षट्खण्डागम – ७, ५४, ८०
षट्पदिसाहित्यकार – २६
संख्यालिपि – १३
संगम–साहित्यकार संसद (Board of Academicians) – २४
संघात राष्ट्रकुल (United states of Tamil) – २४
संपुटक–ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि–प्रकार – ६
संस्कृत–पंचतंत्र – ४८
सगु (श्वान) फारसी शब्द – ५७
सत्प्ररूपणा – १५
सत्यपुत्र (दक्षिणापथ का एक देश) – १५, १८
सत्याश्रय (राजा) – ३५
सन्मति प्रकरण (सिद्धसेन कृत) – ६३
समत्तकउमुइकहा – ५६
समन्तभद्र (आचार्य) – १५, ६३
समवायांग सूत्र – ६
समस्या पूर्ति – ७०
सम्मत्तगुणणिहाणकव्व–(अपभ्रंश अप्रकाशित काव्य) – ४४, ७३, ७४
सम्मेदगिरि – ६८
सम्मेदशिखर – ६६
सम्यक्त्व कौमुदी कथा – ६२
सम्यक्त्वचूड़ामणि – ३४
सम्यक्त्वाराशि (कर्नाटक का मध्यकालीन सेठ) – ३३
सयलविहिविहाणकव्व (नयनन्दि कृत) अपभ्रंश काव्य, त्रुटित) – ५८
सयूरगान – ५१
सल (होयसल वंश) – ३४
सलाम (फारसी) = नमस्कार – ५६
सलीम (शासक) – ५०
सलेत्तोर (बी.ए., डॉ.) – ३२
सवतिगन्धवारणबसदि – ३४
सर्वनन्दि आचार्य (लोकविभाग के लेखक) – ४०, ४७, ४८, ६३
सर्वभूतरुदग्रहणी–लिपि – १३
सर्वरुत्संग्रहणी–लिपि – १३
सर्वसार संग्रहणी–लिपि – १३
सर्वासलरुदग्रहणी–लिपि – १३
सर्वानन्दिसूरि – ४०
सर्वौषधिनिष्यन्दलिपि – १३
सांतरवंश – २७
सागरलिपि – १३
सागारधर्मामृत – २५
साधारण साहु – ७४
साधुकीर्ति – ५०
सामायिक (संस्कृत की प्रार्थनाओं का संग्रह) – ६२
सारसंग्रह (पूज्यपाद कृत) – ६३
सार्थवाह – ७३
सालिग्राम (एक विस्मृत नगर) – ६६
साहसतुंग नरेश – ३२
सिंहनन्दि आचार्य – २८, ३१
सिंहलदेश – १४, १८, २८
सिकन्दर – ४
सिकन्दराबाद – ४६
सितारिका (फारसी) = कावरि (प्राणी विशेष) – ५७
सिद्ध (सिंह) महाकवि (पज्जुण्ण चरिउकार) – ५६

सिद्धसेन (सन्मति-प्रकरणकार) – ६४
सिन्धी-लिपि – १२
सिन्धु देश – ४२
सिरिवालचरिउ–अपभ्रंश, अप्रकाशित (रइधू कृत) – ५६, ७०
सिलाहार (वंशीय सेनापति कालन) – ३३
सी.एन.राव – १८
सुकुमालचरिउ (विबुध श्रीधर)– ४६, ७४
सुगन्धदशमीकथा (अपभ्रंश) – ६, ७४
सुत्त – १४
सुदंसणचरिउ (लुप्त ग्रंथ) रइधू कृत – ५८, ५६
सुदत्तवर्धमान आचार्य (होयसलवंश – संस्थापक) – २८, ३४
सुभाषितार्णव – ६२
सुरजन (सोलंकी) नरेश – ४७
सुरेन्द्रकीर्ति – ६६
सुल्तान गयासुद्दीन – ४६
सुलेमान (अरबी इतिहासकार) – ३७
सुल्तान (माण्डो का) – ४२
सुल्तान (मुहम्मद बिन तुगलक) – ५१
सुवर्णदेवी (अपभ्रंश श्रीपालचरित में वर्णित राजकुमारी) – ७०
सूपशास्त्र-कन्नड कवि मंगरस कृत – २६
सोना (एक लेखनोपकरण–सामग्री–प्रकार) – २
सैयद वंश – ४३
सोनागिर-तीर्थ – ४६
सोमगोड़ा – ३३
सोमदेव सूरि – २६
सोमनाथ – २६
स्कन्धिल (राज्य) – ४२
स्तोत्र ऋषभ (फारसी में लिखित) – ४६
स्थूलिभद्र – १४
स्याही (रिष्टरत्न द्वारा निर्मित) – ७
स्वयंभू – २६, ४६, ५८
स्वस्तिक (खारवेल शिलालेख में अंकित) – २२
हंसदेव (जैनाचार्य, मृगपक्षिशास्त्र के लेखक) – ५६
हंस लिपि – १२
हजारी प्रसाद द्विवेदी (पं.) – ८२
हर्टेल जान (डॉ.) – ४८
हन्सोगे (कर्नाटक का एक जैन विद्या केन्द्र) – २८
हमीर (राज्य) – ४१, ४२
हम्मीर (राज्य) – ४२
हरयाणा – ४२, ४६, ७३
हरिग्रहपुर (नगर) – ६६
हरिवंशपुराण (अपभ्रंश, यशःकीर्ति भट्टारक कृत) – ४६
हाथी गुम्फा – २७
हारिभद्रीय (दशवैकालिक टीका) – ७
हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) – ६०
हिन्दुस्तान – १६
हिमवत् पर्वत – ३०
हिमवन्त (थेरावली) – ५
हिमालय – ४७, ६८
हीर विजयसूरि – ५०
हीरालाल जी (डॉ.) – ७६, ८१, ८२
हीरालाल जैन (पं.) – ८२
हीरालाल जी (दुग्गड़) – ६१
हुमायूँ – ४६
हुम्मच – २८, ३३, ३५
हुल्ल (कर्नाटक सेनापति) – ३१, ३४
हुशंगशाह गौरी – ४३
हूण लिपि – १२
हेमराज जैन – ४६

होयसल नरेश — ३४
होयसलवंश — ३१, ३४, ३८
होल्लकेरे — ३३
ह्यूनत्सांग — ६, ५६

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

अतीत के पृष्ठों से	– डॉ. राजाराम जैन	– जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी १९८९
अपभ्रंश साहित्य	– हरिवंश कोछड	– दिल्ली, वि.सं. २०१६
अभिज्ञान शाकुन्तलम्	– महाकवि कालिदास	– चौखम्बा, वाराणसी
अर्धकथानक	– महाकवि बनारसीदास	– बम्बई, १९५६ ई.
अभिलेख मंजूषा	– रणजीत सिंह सैनी	– दिल्ली, २००० ई.
आचार्य भद्रबाहु– चाणक्य चन्द्रगुप्त– कथानक (रइधु)	– सं. डॉ. राजाराम जैन	– श्री गणेश वर्णी संसथान, वाराणसी, १९८२ ई.
आदिपुराण (महाकवि जिनसेन)	– सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य	– भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६५ ई.
आवश्यक निर्युक्ति भाष्य	–	– रतलाम, १९२८ ई.
उत्तरपुराण – (गुणभद्राचार्य)	– सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य	– भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४ ई.
कुमारपालचरित (आ. हेमचन्द्र)	–	– भावनगर (गुजरात) वि.सं. १९७३
खारवेल कालीन – महारट्ठ संघ एवं – जैन संस्कृति के विकास में उसका योगदान	– (शोधभाषणमाला सन् २००२) डॉ. राजाराम जैन	– प्रकाश्यमान
चालुक्य कुमारपाल	– डॉ. लक्ष्मीशंकर न्यास	– भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२ ई.
छक्खंडागम भाग ३	–	– अमरावती, सन् १९३९–१९५९
जिनसहस्रनाम	–	– भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४ ई.
जैन शिलालेख संग्रह (भाग १–३)	– माणिकचन्द्र जैन सीरीज	– बम्बई, १९५७ ई.
जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व–पीठिका)	– पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	– श्री गणेश वर्णी संस्थान, वाराणसी, १९६६

जैन सिद्धांत भवन– (आरा) ग्रंथावली (भाग१)	– सं. डॉ. ऋषभ चन्द्र फौजदार	– जैन सिद्धांत भवन आरा (बिहार)
तिलोयपण्णत्ती (यतिवृषभ)	– जीवराज ग्रंथमाला	– शोलापुर (महाराष्ट्र) १९४३, १९५२ ई.
तीर्थंकर महावीर और– उनकी आचार्य परम्परा	– डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री	– सागर (म.प्र.)
त्रिलोकसार	–	– बम्बई, वी. नि. सं. २४४४
त्रिषष्ठि शलाका महापुरुष चरित (अपभ्रंश) पुष्पदन्त	– माणिकचन्द्र ग्रंथमाला	– बम्बई, १९३७–१९४१ ई.
दक्षिण भारत में जैनधर्म	– पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	– भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सन् १९६७
दशवैकालिक टीका	– (हरिभद्र कृत)	– बम्बई
धण्णकुमार चरिउ (रइधू)	– सं.डॉ. राजाराम जैन	– जीवराज ग्रंथमाला शोलापुर (महाराष्ट्र), १९७५ ई.
नन्द–मौर्य युगीन भारत	– के.ए. नीलकण्ठ शास्त्री	– दिल्ली, १९६६ ई.
पतंजलिकालीन भारत	– डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री	– बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९६३
पम्पयुग के जैनकवि	– पं.के. भुजबलि शास्त्री	–
पाठालोचन के सिद्धांत	– कन्हैया सिंह	– इलाहाबाद, १९६२
प्रश्नोत्तररत्नमालिका	– (सम्राट अमोघवर्ष)	–
प्राकृत साहित्य का इतिहास	– डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री	– वाराणसी, १९६६ ई.
प्राच्य भारतीय श्रमण संस्कृति अनेकला	– मुनि पुण्य विजय जी (गुजराती	– अहमदाबाद
प्राचीन लेख संगह (भाग १)	–	– भावनगर, १८८५
प्राचीन भारतीय लिपिमाला	– गौ. हि. ओझा	– दिल्ली, १९५९
पुण्णासवकहा (रइधू)	– सं.डॉ. राजाराम जैन	– दिल्ली, जनवरी २०००
पुरुदेवचम्पू	– माणिकचन्द्र सीरिज	– बम्बई, वी.सं. १९८५
भानुचन्द्र सिद्धिचन्द गणि चरित	– सिंघी जैन ग्रंथमाला	– बम्बई, १९४१

भारतीय संस्कृति के विकास में जैनधर्म का योगदान	– डॉ. हीरालाल जैन	– भोपाल, १६६२
मध्य एशिया एवं पंजाब में जैनधर्म	– पं. हीरालाल दुग्गड़	– दिल्ली, १६७६
महापुराण (जिनसेनाचार्य)	– सं.पं. पन्नालाल साहित्याचार्य	– भारतीय ज्ञानपीठ
महावंश	– सं.डॉ.गायगर (Geiger)	– लन्दन, १६१२
रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन	– डॉ. राजाराम जैन	– वैशाली, १६७४
राजप्रश्नीय सूत्र	– व्यावर संस्करण	–
वड्डमाणचरिउ (विबुध श्रीधर)	– सं.डॉ. राजाराम जैन	– भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १६७५
विक्रमोर्वशीयं नाटकं	– (कालिदास)	– काशी, वि.सं. २००७
विशेषावश्यक भाष्यं	–	– बम्बई, १६२४–१६२७ ई.
समवायांग सूत्र	–	– अहमदाबाद, १६३७ ई.
सूत्रकृतांग चूर्णि	–	– रतलाम, १६४१ ई.
शिष्यहितान्यास वृत्तिः (कातन्त्रव्याकरण)		
शौरसेनी प्राकृत भाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	– डॉ. राजाराम जैन	– कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, २००१ ई.
ह्यूनत्सांग की भारत यात्रा	–	– इण्डियन प्रेस प्रयाग

ENGLISH REFERENCE BOOKS

Image of India	-	- Moskow (USSR), 1984
Introduction to Indian Texual Criticism	- Dr. S.M. Katre	-
Jainas in the history of Indian literature	- Dr. Winternitz	- Ahmedabad, 1946
Jainism and Karnataka Culture	- S.R. Sharma	- Dharwar, 1940

Historical and literary Inscriptions	- Dr. R.B. Pandey	- Varanasi, 1962
History and Culture- of Indian People Vol. 1-5		- Bombay
Medieval India	- Dr. B.A. Salatore	- Bombay, 1938
Mysore Gazetteer Vol. I	-	- 1909
Pali language and literature	- Geiger	- Calcutta, 1956
Rastrakootas and their times	- Dr. A.S. Altekar	- Poona, 1934

अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ

पासणाह चरिउ – (विबुध श्रीधर) (प्रकाश्यमान)
महावीर चरिउ – (कवि जयमित्र हल्ल)
मेहेसर चरिउ (रइधू)
सम्मत्तगुणणिहाण कव्व (रइधू)
सिरिवालचरिउ (रइधू)

पत्र-पत्रिकाएँ

अहिंसावाणी (जैनकथा विशेषांक) – सं.डॉ. कामताप्रसाद – अलीगंज (एटा)
कादम्बिनी (मासिक) – दिल्ली
जैन साहित्य संशोधक – अहमदाबाद, ३/६
जैनसिद्धांत भास्कर – आरा, बिहार
दैनिक जागरण (दिल्ली) दिनांक २८/६/२००१
नवनीत (बम्बई) नवम्बर १९५५
प्राकृत–विद्या (दिल्ली)
साहित्य सन्देश (आगरा) दिसम्बर १९५६

श्री श्रवणबेलगोला स्थित धवलगिरि का चन्द्रगिरि से लिया गया एक विहंगम दृश्य।